प्रकाशक—

**केशरीचंद सेठिया**

मन्त्री, श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक सघ

रागडी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

सम्पादक—डॉ० मनोहर शर्मा

प्रथमावृत्ति—१००० (स० २०३१, चैत्र शुक्ला १३, महावीर जयंती)

मूल्य—रु० १ ५० (एक रुपया पचास पैसा)

मुद्रक—

भारत प्रिंटिंग प्रेस,

महर्षि दयानंद मार्ग, बीकानेर (राजस्थान)

सत्वपु मत्रा गुणषु प्रमोद, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥



परम पूज्य पिताश्री की

पावन स्मृति

में



कन्हैयालाल लोढ़ा

# प्रकाशकीय

सत-महात्माओ का किसी नगर मे पधारना अत्यन्त मंगल सूचक होने के साथ ही उस नगर के लिए परम सौभाग्य का विषय भी होता है। परम श्रद्धेय चारित्र-चूडामणि, बाल-ब्रह्मचारी, समता-दर्शन व्याख्याता आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालाल जी म सा. ने अपने पिछले चातुर्मास (स० २०३०) हेतु बीकानेर मे विराजमान होकर यहा की जनता को कृतार्थ किया। ऐसा सुअवसर प्राप्त करके बीकानेर और उसके आसपास की जनता अत्यन्त आह्लादित एव गौर-वान्वित हुई।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म सा के दैनिक कार्यक्रम का एक प्रमुख अग प्रात कालीन प्रवचन है। आपका प्रत्येक प्रवचन प्रमु-खत आध्यात्मिकता एव समता-दर्शन के प्रचार-प्रसार हेतु होता है और उसमे लोक-कल्याण की भावना ओत-प्रोत रहती है। अत बडी सख्या मे श्रद्धालु भक्त इस कार्यक्रम मे प्रतिदिन उपस्थित होकर ज्ञान एव पुण्य-लाभ करते रहे।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म सा के प्रवचन किसी एक समाज अथवा देश विशेष के लिए न होकर, सम्पूर्ण मानव-जाति मे शाति तथा उदात्त भावनाओ का सचार करने की दृष्टि से होते है। ऐसी स्थिति मे यह अनुभव किया गया कि आपके प्रवचनो को पुस्तक रूप मे प्रकाशित करके सर्वजन-सुलभ बनाया जाये, जिससे कि सुदूर बैठे हुए व्यक्ति भी अपने जीवन को परिमार्जित करने एव ऊचा उठाने का अवसर प्राप्त कर सके। फलत आचार्य श्री के ९ प्रवचनो का प्रथम सग्रह 'आध्यात्मिक आलोक' नाम से पहिले प्रकाशित किया जा चुका है और अब यह द्वितीय सग्रह 'आध्यात्मिक वैभव' आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

सघ की ओर से मनोनीत प्रवचन-प्रचार-प्रसार समिति के सयोजक श्रीमान् सुन्दरलाल जी सा. तातेड ने इस पुस्तक को भी अल्पकाल मे ही पूरी साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करने मे जो श्रम किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

साथ ही श्रीमान् कन्हैयालाल जी सा. तातेड भी सम्पूर्ण बीकानेर सघ की ओर से हार्दिक धन्यवाद के पात्र है, जिन्होने इस पुस्तक को अपने स्वर्गीय पिताश्री सेठ आसकरण जी सा. तातेड की पावन-स्मृति मे समर्पित करते हुए इसके प्रकाशन का व्यय-भार वहन किया है। यह तो सर्व-विदित ही है कि स्वर्गीय सेठ आसकरण जी सा तातेड अत्यन्त सरल, सेवाभावी और समाज को गौरवान्वित करने वाले व्यक्तित्व के धनी थे।

श्रद्धेय प० विद्याधर जी शास्त्री ने अपने अत्यन्त व्यस्त कार्य-क्रम मे से समय निकाल कर 'आध्यात्मिक वैभव' की प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया, एतदर्थ कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ अपना हार्दिक आभार स्वीकार किया जाता है।

'आध्यात्मिक वैभव' मे संकलित प्रवचनों को आचार्य श्री के विचार एव भाषा को यथावत् रखने की पूरी चेष्टा के साथ सम्पादित किया गया है। सम्पादन कार्य हेतु डॉ. मनोहर शर्मा की सेवाए प्राप्त करके हमे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, जिसके लिए आप हार्दिक धन्यवाद के पात्र है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म. सा के प्रवचन सदैव शास्त्र-सम्मत एव साधु-भाषा मे ही होते है परन्तु फिर भी इनके सम्पादन, मुद्रण एवं प्रकाशनादि मे यदि कोई त्रुटि रह गई है तो उसके लिए हमारी ओर से क्षमा-प्रार्थना की जाती है।

**केशरीचन्द सेठिया**

मत्री,

श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक सघ

बीकानेर

बीकानेर

वि स. २०३१, चैत्र शुक्ला १३

महावीर जयती

# प्रस्तावना

'आध्यात्मिक वैभव' मे आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. के ११ प्रवचनो को सम्पादित करके प्रकाशित किया गया है। इन प्रवचनो का प्रत्येक वाक्य महाराज साहब के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और सास्कृतिक ज्ञान से ओत-प्रोत होने के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक एव आत्मिक समुत्थान हेतु प्रेरणा प्रदान करने वाला है।

महाराज का प्रत्येक सुझाव व्यावहारिक होने के साथ ही व्यक्ति की साधना-शक्ति से वहिर्भूत नही है। आपका यह दृढ अभिमत है कि कोई भी आत्मा स्वभाव से नि शक्त और नि सार नही है। हम सब आध्यात्मिक वैभव के अधिकारी और भगवान् विमलनाथ के समान विमलता एव नाना प्रकार की शक्तियो से सम्पन्न हो सकते हैं।

वर्तमान युग के जीवन की सबसे अधिक शोचनीय विडम्बना यह है कि हमारा भावना-पक्ष प्रबल होने पर भी हमारा कार्य-पक्ष अत्यन्त निर्वल है। हम सब मे अमृतमय जीवन विताने और बनाने की कला विद्यमान है। हम अपने आप उसका सृजन कर सकते हैं परन्तु प्रयत्न के बिना उन शक्तियो का प्रादुर्भाव नही हो सकता। यदि हम अपने जीवन की क्रियाओ का प्रयोग शुद्ध आत्मिक लक्ष्य की ओर करे तो यह निश्चित है कि उससे आत्मिक शक्ति प्राप्त होगी ही—

'यदि आप अपने जीवन को विमल बनाना चाहते है तो दुनिया की मलिनता के काटो को ढू-ढू कर अपने आपको दु खी क्यो बना रहे है ? क्यो नही आप अपने जीवन मे ऐसे आवरण लगा लेते, जिससे कि सारी दुनिया मलिन काटो से भरी रहे

परन्तु आपका जीवन तो अबाध गति से इस प्रकार चले कि कोई आपका कुछ बिगाड ही नही कर सके।' (पृ ८६)

खेद है कि आज के लोग अपनी बुराइयो को समझ कर भी उनको हटाने की अपेक्षा उनमें अधिक से अधिक रस ले रहे है—

'आज का तरुण-वर्ग कानो मे तेल डाल कर सोया हुआ है। तरुण सोचते है कि धर्म करना तो वृद्धो का काम है। हमको तो राजनीति मे भाग लेना है या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है। यह वर्ग जीवन के लक्ष्य को भूला हुआ है।' (पृ ७०)

'आज की युवा-पीढी कई कुव्यसनो से लाछित है। आज का युवक-वर्ग उनका दास बन गया है। क्या यह जीवन के साथ खिलवाड नही है? जो नैतिकता के धरातल को भूल कर उससे गिर जाये तो क्या ऐसे युवक युवा-पीढी के योग्य है? अरे, इनसे तो वे बूढे ही अच्छे है, जो कुव्यसनो से दूर है।' (पृ. ७१)

महाराज के इन वाक्यो से यह प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध हो रहा है कि आपके हृदय में सामाजिक परिष्करण की जो भावना है, वह कितनी प्रबल है और वे आज के युवको से किस प्रकार के जीवन की अपेक्षा रखते है।

यह जीवन साधना का जीवन है— पद-पद पर विषमता को पनपाने की अपेक्षा यह समता-दर्शन के अनुपालन और सर्वत्र क्रिया-शुद्धि का जीवन है। इसमे 'कथनी' की अपेक्षा सर्वत्र 'करनी' की प्रधानता है। महाराज का दृढ अभिमत है कि यदि हम क्रिया-शुद्धि के साथ आगे बढे तो हम सब श्रीकृष्ण आदि के समान नाना गुणों के आगार बन सकते है—

'आप अपनी शक्ति के अनुसार अपने अन्दर हरि का जन्म कराइये। वह जन्म आपके लिए हितावह होगा।' (पृ० ११३)

'जिन्होने गृहस्थ अवस्था में अपने जीवन को नैतिकता के साथ रखा है, जिन्होने नैतिकता को प्रधानता देकर आध्यात्मिकता की मजिल

तैयार करने की सोची है और जिनका लक्ष्य शुद्ध है, वे इस सृष्टि के बीच चमकते हुए सितारो की तरह हजारो वर्षों तक प्रकाश देते रहेगे। (पृ० १०१)

किं वहुना, महाराज का प्रत्येक वाक्य श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य है। शुद्ध नैतिकता की अपेक्षा इसमे किसी विकृत राजनीति या अन्य किसी भी धर्म या वाद विशेष पर किसी तरह का आक्षेप नही है। यहा तो सर्वत्र कल्याणकारी उपदेशो का प्रकाशमान स्वरूप है, जो शास्त्रीय एव ऐतिहासिक दृष्टान्तो से समर्थित है।

इस प्रकाशन हेतु श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक संघ पुन पुन धन्यवाद का पात्र है। आशा है, सघ इस परमोपयोगी प्रकाशन-क्रम को जारी रखेगा।

बीकानेर
विद्याधर शास्त्री
वि. स २०३१, महावीर जयती

# निवेदन

परम श्रद्धेय बाल-ब्रह्मचारी, चारित्र-चूडामणि समता-दर्शन-व्याख्याता आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालाल जी म० सा० का स० २०३० का चातुर्मास बीकानेर मे सानन्द सम्पन्न हुआ ।

आचार्यश्री के तप, शील और ज्ञान की महिमा लोक-विश्रुत है, अत आपके दर्शन करने तथा व्याख्यान सुनने के लिए बीकानेर क्षेत्र के ही नही, अपितु सुदूर प्रदेशो के भी बहुसख्यक श्रावक-सघ इस पुण्य-अवधि मे बीकानेर पहुच कर लाभान्वित हुए ।

श्री साधुमार्गी जैन बीकानेर श्रावक सघ ने आगन्तुक महानुभावो के निवास आदि की सुव्यवस्था हेतु अनेक प्रकार की समितियां सगठित की, जिनमे 'प्रवचन-प्रचार-प्रसार समिति' के सयोजन का कार्य मुझे सौपा गया ।

प्रवचन की पुण्य-बेला मे उपस्थित होकर आचार्यश्री की अमृत-वाणी का लाभ अगणित सुश्रावको के साथ ही यहा की भक्त-जनता ने भी प्राप्त किया । उस समय का पवित्र तथा उत्साहपूर्ण वातावरण सदैव अविस्मरणीय रहेगा । बीकानेर तो मानो एक पुनीत तीर्थ-स्थल ही बन गया । प्रवचन के समय भवन मे तिल धरने को भी रिक्त स्थान नही मिल पाता था ।

आचार्यश्री के व्याख्यान जीवन के सभी क्षेत्रो में पुण्य एवं उदात्त भावनाओ का सचार करने वाले होते है । वे किसी एक वर्ग विशेष से सम्बधित न होकर सार्वजनीन एव सार्वकालिक सत्य से

अनुप्राणित होते हैं। उनमे नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की अमृतधारा प्रवहमान रहती है। इसी प्रकार आपकी भाषण-शैली भी अत्यन्त सुबोध एव प्रभावपूर्ण है। आपके प्रत्येक वाक्य मे गहन चितन तथा अनुभूति का प्रकाश रहता है, जो सहज ही श्रोता को मत्रमुग्ध बनाने मे समर्थ है।

प्रवचन-प्रचार-प्रसार समिति द्वारा निश्चय किया गया कि आचार्यश्री के वचनामृत का प्रसाद स्थानीय जनता के साथ ही सुदूर बैठे हुए लोगो तक भी पहुचाया जाये, जिससे कि वे भी अपने जीवन को पवित्र एव सात्त्विक बना सके। तदनुसार कुछ चुने हुए व्याख्यान 'श्रमणोपासक' मे प्रकाशित किए गए परन्तु मात्र इतना ही कार्य पर्याप्त नही समझा गया और प्रवचन-माला के प्रकाशन की योजना प्रारम्भ की गई।

प्रत्येक प्रवचन को लिपिबद्ध किये जाने की व्यवस्था थी, जिससे समिति के पास प्रचुर सामग्री सचित हो गई। ऐसी स्थिति मे चुने हुए नौ प्रवचनो का प्रथम सग्रह 'आध्यात्मिक आलोक' नाम से प्रकाशित किया गया, जिसका सुधि पाठको ने अत्यन्त उत्साहपूर्ण स्वागत किया।

उसी प्रकाशन-क्रम मे प्रवचनमाला का यह द्वितीय ग्रन्थ 'आध्यात्मिक वैभव' श्रद्धालु पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव हो रही है। इसमे ११ प्रवचन सकलित हैं। आशा है, प्रथम सग्रह 'आध्यात्मिक आलोक' के समान ही इसको भी अच्छा सम्मान प्राप्त होगा।

कहना न होगा कि 'आध्यात्मिक वैभव' मे सकलित प्रवचन सम्पादित रूप मे प्रस्तुत किए गए है परन्तु इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इनमे आचार्यश्री के विचार एव भाव ही नही, अपितु आपकी भाषा-शैली भी यथावत् ही रहे, जिससे कि प्रत्येक पाठक ऐसा अनुभव करे मानो वह स्वय प्रवचन-स्थल में उपस्थित होकर आचार्यश्री के श्रीमुख से ही व्याख्यान सुन रहा है।

इस प्रकाशन योजना से पाठक-समुदाय लाभान्वित होगा तो प्रवचन-प्रचार-प्रसार समिति अपने श्रम को सफल समझेगी । यदि इस ग्रन्थ मे कही कोई त्रुटि रह गई है तो उसके लिए सहज-भाव से क्षमा प्रार्थना की जाती है । इस विषय मे सुधि-पाठको के सुझाव सदैव स्वागत योग्य है ।

सुन्दरलाल तातेड़

संयोजक

प्रवचन-प्रचार-प्रसार समिति

बीकानेर—

सं० २०३१, चैत्र शुक्ला १३

(महावीर जयन्ती)

# संपादकीय

'आध्यात्मिक वैभव' मे परम पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म सा के बीकानेर-चातुर्मास की अवधि मे दिये गये प्रवचनो मे से ११ प्रवचन सकलित किये गये है। इससे पूर्व आचार्यश्री के ६ प्रवचनो का सग्रह 'आध्यात्मिक आलोक' नाम से प्रकाशित किया जा चुका है। इन सब प्रवचनो का मूलाधार आध्यात्मिक-जीवन की अनुभूति अथवा समता-जीवन-दर्शन का प्रकाशमान स्वरूप है।

सत-महात्माओ के प्रवचनो का सम्पादन एक विशेष उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है क्योकि उनका प्रत्येक वाक्य अर्थ-गभीर एव अनुभूतिपूर्ण होता है। ऐसी स्थिति मे इन प्रवचनो का सम्पादन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि परम श्रद्धेय आचार्य श्री के विचार ही नही, अपितु आपकी भाषा-शैली भी यथावत् ही रहे। फिर भी प्रस्तुत पुस्तक मे यदि कोई त्रुटि रह गई है तो उसके लिये विनम्र भाव से क्षमा-याचना की जाती है।

बीकानेर (राजस्थान)
महावीर जयती, विक्रम स० २०३१ — मनोहर शर्मा

# आध्यात्मिक वैभव

# आध्यात्मिक भूमिका

"श्री श्रेयास जिन अन्तरजामी आतमरामी नामी रे
अध्यातम जे वस्तु विचारी, बीजा बधा लवामी रे
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे 'आनन्दघन' मत वासी रे।"

श्रेयास परमात्मा की प्रार्थना की पक्तियो मे से जिन पक्तियो का विश्लेषण किया जा चुका है, उनको छोड कर यहा अतिम पक्ति का मुख्य तौर पर उच्चारण किया गया है और पूर्व की आध्यात्मिक भूमिका के साथ जीवन के लक्ष्य के विषय मे किये गये सकेत को आधार मानने वालो को आत्मा के सम्बन्ध मे कुछ कहा जा रहा है।

अध्यात्मी व्यक्ति कौन है ? विभिन्न तरीको से नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव की दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन का विश्लेषण स्पष्ट कर दिया गया है। भावात्मक स्थिति के साथ चार निक्षेपो को जोडते हुए इस पक्ति मे कहा गया है कि अध्यात्मी वही है, जो वस्तु विचार को अर्थात् इस विराट् विश्व मे जो अनेक वस्तुये दृष्टिगत हो रही है, उन अनेक पदार्थों को ज्ञेयदृष्टि से जान लेवे और उनका ज्ञान होने के बाद यह चिन्तन करे कि कौन-सी वस्तुये ग्रहण करने योग्य हैं और कौन-सी छोडने योग्य। हेय और ग्रहण-वृत्ति अर्थात् कुछ छोडने और ग्रहण करने की भावना तभी पैदा होगी जब हम वस्तु-स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करेंगे। वस्तुयें तो बनती है और बिगडती है तथा कुछ समय तक टिक कर विलीन भी हो जाती है। यहा उन वस्तुओ का मुख्य विचार नही है। यहा तो मुख्य विचार उन वस्तु का है जो कभी विलीन नही होती, सदा के लिए जिसका अखण्डित रूप है और जिसके

लिए कहा गया है कि—

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावकः ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

—गीता, अ० २, श्लोक २३

अर्थात्—शस्त्र जिसका छेदन नही कर सके, अग्नि जला नही सके, पानी गला नही सके और हवा उडा नही सके ऐसे परम पवित्र तत्त्व का आध्यात्मिक दृष्टि से यदि चिन्तन किया गया और प्रत्येक क्षेत्र मे उसी का लक्ष्य रखा गया तो ऐसा करने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक पुरुप है ।

इस लक्ष्य को सामने रख कर यदि कोई व्यक्ति व्यापार भी कर रहा है तो उसका वह व्यापार नैतिकता के धरातल पर होगा । वह सोचेगा कि मेरे जीवन का लक्ष्य तो आध्यात्मिक दृष्टिकोण का है । मुझे अमर तत्त्व पाना है । उसकी उपलब्धि जिन साधनो से हो सके, वे ही साधन मुझे अपनाने है । मै पूर्ण साधना मे जुट नही पा रहा हू । मै इस गृहस्थ-अवस्था मे रहता हुआ आध्यात्मिक लक्ष्य की साधना करना चाहता हू । गृहस्थ-अवस्था का अवलम्बन अर्थ-दृष्टि पर निर्भर है और अर्थ-दृष्टि को सपादित करने के लिए व्यापार करना पड़ रहा है । इस व्यापार के माध्यम से अर्थ-सिद्धि होती है परन्तु अर्थ मेरा लक्ष्य नही है । अर्थ तो मात्र साधन है । मेरा साध्य तो आध्यात्मिक जीवन है । इस साधना को जहा तक हो सके, मै पवित्र रख पाऊ तो उत्तम है । यदि यहा मैं ईमानदारी छोडकर अनैतिक जीवन के साथ अर्थोपार्जन करूगा तो इस अनीति का दुष्परिणाम मेरी आत्मा को भोगना पडेगा और मै अपने उस शुद्ध लक्ष्य से गिर जाऊगा । इसके साथ ही साथ यदि मैने अर्थ का बहुत उपार्जन कर लिया तो भी मै इसे स्थायी रूप से पकड कर नही रख पाऊगा । यह तो कपूर की तरह उडने वाला तत्त्व है । इसको इन्सान अपनी मुट्ठी में कितना ही बंद करके रखे परन्तु वह उडे बिना नही रहेगा । जैसा इस कपूर का स्वभाव है, वैसा ही

इस द्रव्य-सपत्ति का स्वरूप है। अत मुझे आत्मशुद्धि का लक्ष्य बना कर अपने जीवन को नैतिकता के साथ बिताना चाहिए। ऐसा करने मे स्पष्ट ही दुहरा फायदा होगा। एक तो मेरी आत्मा मलिन नही बनेगी और दूसरे पूर्व-सचित मलिनता भी हल्की होगी। जिस अर्थ को मैने सचित किया, उसमे यदि मै यथायोग्य, यथाप्रकार समवितरण की आस्था रख कर चलूगा तो इन पदार्थों पर ममत्व-भाव कम होगा। उसका कम होना आत्मशुद्धि प्राप्त करना है। इन पदार्थों मे जो कुछ भी ममत्व-भाव है, वह आत्मा की अशुद्धि कही जा सकती है। इससे आत्मा दबती चली जाती है। इस अवस्था मे आध्यात्मिक वस्तु का चिंतन नही हो पाता है। इसलिए आध्यात्मिक लक्ष्य को स्थिर करने की दृष्टि मे और उसके साधन जुटाने के लिए गृहस्थ-अवस्था मे यदि मुझे व्यापार भी करना पडे तो मै शक्ति-भर ईमानदारी को सामने रखूगा। कदाचित् इस अर्थ के लिए नौकरी करनी पडे तो जिस पद पर मै पहुचू, उस पद पर रहता हुआ भी इस शुद्ध लक्ष्य को विस्मरण नही करूगा। सदा उसको सामने रखकर चलूगा तो मै तो इस लोक मे ईमानदार व्यक्ति साबित होऊगा और परलोक हेतु भी मेरी कुछ आध्यात्मिक भूमिका बन सकेगी।

इस प्रकार गृहस्थ-अवस्था मे रहते हुए, जितने विषय है, उनके अन्दर प्रवृत्त होते हुए भी जो व्यक्ति आध्यात्मिक चिन्तन करता रहेगा, वह आध्यात्मिक कहला सकता है। यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक लक्ष्य को भूल कर इन नाशवान तत्त्वो पर मोह रखता हुआ प्रवृत्ति करता है तो वह आध्यात्मिक नही कहला सकता, भले ही वह मुह मे रट लगाता रहे, अखबार और पुस्तको मे विज्ञापन करता रहे कि मै अध्यात्मी हू, मै अध्यात्मी हूं। परन्तु ज्ञानी जन कहते है कि वह अध्यात्मी नही है। कवि आनन्दघनजी की भाषा मे वह 'लबासी' है। इसका मतलब है कि वह आध्यात्मिक जीवन को बदनाम करने वाला है। उसको आध्यात्मिक नही कह सकते है क्योकि उसने आध्यात्मिक

लक्ष्य को छोड कर ससार के पदार्थो को लक्ष्य बना लिया है । इसलिए वह आध्यात्मिक कहलाने का अधिकारी नही है ।

ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की विडम्बना करने वाले है। वे न तो स्वय के लक्ष्य को और न दूसरो के ही लक्ष्य को स्थिर कर पाते है । कविता की समाप्ति के साथ सकेत दिया गया है कि—

वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, आनदघन-मत-वासी रे ।

जो वस्तु-स्वरूप को ठीक तरह से समझ कर उसका प्रकाशन करता है और जैसा प्रकट करता है वैसा यथाशक्ति जीवन मे भी निरन्तर उतारता हुआ चलता रहता है, वह 'आनन्दघन-मत-वासी' है ।

'आनन्दघन' शब्द सज्ञावाची है और साथ ही व्युत्पत्ति-अर्थक भी है । सज्ञावाची तो इस कारण कि आनन्दघन कवि का नाम है और व्युत्पत्ति की दृष्टि से आनन्दघन का तात्पर्य सिद्ध परमात्मा है। आत्मा के आनन्द को उन्होने ज्ञानरूप से आत्मा मे सगृहीत कर लिया है।

एक सज्ञा तटस्थ दृष्टि से दी जाती है—लोहे को कूटने वाले एक पिंड को भी घन की सज्ञा प्राप्त है । कितनी ही चोटें लगाई जाये, परन्तु लोहा कूटा जाएगा और घन मजबूत रहेगा । इसी प्रकार जिन आत्माओ ने अपने आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लिया है, उन पर आपत्तियो के कितने ही घन क्यो न पडें, सकट के कितने ही झझावात उनको झकझोरने के लिये क्यो न आ जाये, फिर भी उनमे तीन काल मे भी दुःख का प्रवेश नही हो पाता । इस प्रकार का आनन्द-समूह जिस आत्मा को प्राप्त हो, वह चरम सीमा पर पहुचने के साथ सदा के लिये आनन्दघन मे निवास करने वाली बन जाती है ।

इस लक्ष्य के साथ जो साधक वस्तु-स्वरूप का चिन्तन करके चल रहा है, वह अपनी शक्ति को परिपूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है । इसी उद्देश्य से वीतरागदेव ने जो कुछ भी स्वरूप प्रतिपादित किया है, उसमे समग्र ससार की वस्तुओं को दो रूपो मे विभक्त कर

दिया है—एक जड और दूसरा चेतन। जड की उपस्थिति के साथ चेतन की जो पर्यायें बनी, वे अलग-अलग सज्ञाये जीव, अजीव आदि नव तत्त्वो के रूप मे आ गई। उन नव तत्त्वो का यदि भलीभाति विज्ञान कर लिया जाए तो यह आत्मा आनन्दघन के मार्ग को भली-भाति ग्रहण करके वीतराग-दशा की अवस्था को पा सकती है।

कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो परम आनन्द की अवस्था को न चाहता हो ? जहा तक मैं सोचता हू, हरएक आत्मा को परम आनद की अभिलाषा अवश्य है। परन्तु सही मार्ग के अभाव मे आत्मा इस ससार के विचित्र दृश्यो मे उलझ रही है। यदि वह वीतराग-वाणी के अनुरूप आध्यात्मिक विज्ञान को ग्रहण करे तो उसमे वीतरागता आए बिना नही रहेगी।

सत और सती वर्ग इस विषय का यथाशक्ति प्रतिपादन करते है। वे अपनी कर्तव्य-दृष्टि से सबोधन भी देते है। परन्तु इस विषय को ग्रहण करने की जिज्ञासा जब तक श्रोताओ मे जागृत नही होगी, तब तक वे (श्रोता) इस मार्ग को पकड नही पायेंगे। व्याख्यान की दृष्टि से वे व्याख्यान श्रवण कर लेगे, कुछ समय के लिए यदि वे एकाग्र रहे और योगो की वृत्ति शुभ रही तो निर्जरा भी कर लेंगे परन्तु इससे आगे का लाभ वे नही उठा सकेंगे। वस्तुत इस विषय मे आगे प्रवेश करना है तो ससार की वस्तुओ का अध्ययन करते हुए भी उनमे उलझे न रहे और आध्यात्मिक विषय मे अपनी शक्ति लगायें।

इस प्रकार शक्ति लगाने का कार्य हर समझदार व्यक्ति कर सकता है। पढा-लिखा विचारवान व्यक्ति इसमे अधिक प्रगति कर सकता है। परन्तु बाहरी पढाई की दृष्टि से अक्षरीय-ज्ञान भिन्न है और आध्यात्मिक दृष्टि का ज्ञान भिन्न। इनकी वर्णमाला उस अक्षरीय ज्ञान से भिन्न है। अक्षरीय-ज्ञान की दृष्टि से तो बहुतेरे विद्वान मिल जायेंगे परन्तु यदि अक्षरीय-ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन का मार्ग होता तो उनसे सम्पन्न सभी व्यक्ति आध्यात्मिक-ज्ञान से ओत-प्रोत

होकर आत्मा की शाति का अनुभव करते । इस सम्बन्ध में अनुभव विपरीत ही दृष्टिगत हो रहा है । लोग जितने अधिक अक्षरीय-ज्ञान के साथ डिग्रिया प्राप्त करके आगे बढे है, अधिकाशत उनका मानस उतना ही अधिक नाशवान तत्त्वो मे आसक्त बना हुआ-सा दिखलाई देता है।

आध्यात्मिक जीवन की यत्किचित् भावना भी कुतर्को के माध्यम से मलिन-सी बन गई है । यही कारण है कि आज अधिकाश व्यक्तियो का मस्तिष्क इस आतरिक शक्ति से शून्य है । इसका परिणाम है कि वे व्यक्ति प्राय अपने जीवन की शक्ति को नियन्त्रित नही कर पा रहे है । वाणी पर उनका अंकुश नही है । कभी-कभी तो उनकी वाणी इस प्रकार बिना अकुश के बाहर निकल पडती है कि जिसको सुन कर सभ्य व्यक्ति लज्जित होते है । यह बडा ही चितनीय विषय है ।

लोगो का कथन है कि आजकल छात्रो द्वारा अपनी मागो की दृष्टि से जो जुलूस या सभाओ का आयोजन होता है, उनमे छात्र-वर्ग तो बिना नियत्रण के बोलता ही है परन्तु अध्यापक-वर्ग की भी नियत्रण करने की शक्ति प्राय लुप्त-सी हो गई है । जब अध्यापक-वर्ग की यह दशा है तो छात्रो की वैसी दशा बने, इसमे आश्चर्य ही क्या है ? बालक तो अनुकरणशील प्राणी है । वे अध्यापको को जैसा बर्ताव करते हुए देखेगे, स्वय भी वैसा ही करेगे । साथ ही जैसा वे माता-पिता का बर्ताव देखेगे, उसका भी अनुकरण करेगे । यह देख कर माता-पिता सोचे कि आजकल के छात्र बिगड गये है तो यह दोष किसका है ? बालको पर दोपारोपण तो कर दिया जाता है परन्तु वे अपने आपको नही देखते है कि उनका अपना जीवन भी आध्यात्मिक लक्ष्य से शून्य बन कर इन्ही नाशवान पदार्थो मे लिप्त है ।

अपने अधिकारो को मागना अथवा आवश्यक वस्तु की माग के लिए आदोलन करना कोई अनुचित नही कहा जा सकता परन्तु आदोलन का तरीका नियत्रित रखा जाए और उस नियंत्रण के साथ आध्यात्मिक जीवन की स्थिरता भी रहे । यदि नैतिक आदोलन और

अधिकारों की माग सभ्य तरीके से की जाती है तो उसका असर दुगुना होगा और हरएक व्यक्ति उसके साथ सहानुभूति प्रकट करेगा।

आज के मानव की विचित्र दशा है। यदि वास्तविक शाति का अनुभव करना है तो आप मात्र इस अक्षरीय-ज्ञान के भरोसे न रहे। आप अक्षरीय-ज्ञान के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करने मे लगे और आध्यात्मिक ज्ञान की वर्णमाला को सीखने का अभ्यास करे। यदि उसको सीखने की जिज्ञासा रखी तो सतो से सुविधापूर्वक आध्यात्मिक ज्ञान सीख सकेंगे। यदि सतो के निमित्त से आपने आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा ग्रहण कर ली और इस वर्णमाला को आप ठीक तरह से सीख गए तो परमात्मा के उस सत्-चित्-आनन्दघन रूप को आहिस्ता-आहिस्ता प्राप्त करने का रास्ता अपना लेंगे और जीवन मे नवीन आतरिक शाति का अनुभव होगा।

इस दृष्टिकोण से यह जिज्ञासा आपमे स्वत जागृत होनी चाहिए। मन प्रेरणा दे तो आप सोचे और मन प्रेरणा न दे तो आप नही सोचे, यह आपकी सुषुप्ति का परिणाम है। आप जीवन के विषय मे जागृत नही है, प्रगाढ निद्रा मे सोए हुए है। यदि यत्रवत् खाने मे, पीने मे, सोने मे, देख लेने में ही आप अपने को धन्य समझते है तो ज्ञानीजन कहते है कि यह आपकी मूर्छित अवस्था है। दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो यह बिना नियत्रण के मस्तिष्क की स्थिति है। बिना नियत्रण का मस्तिष्क कुछ भी कार्य कर जाए, उसका कोई मूल्य नही है।

आप मानव है तो मानव की स्थिति से चिन्तन का लक्ष्य लेकर चले और जागृत बने। जागृत बनने के लिए आप स्वय जागे। आपकी जागृति मे समाज की, देश की और विश्व की जागृति हो जाती है। परन्तु ये सब कार्य आपकी आध्यात्मिक स्थिति से ही बन सकते है।

बन्धुओ, जिन्होने इस मार्ग को अपनाया है, वे चाहे गृहस्थ-

अवस्था मे रहने वाले हो, महिला या पुरुष पर्याय में हो, चाहे संसार की व्यवस्था करते हो परन्तु उनमे आध्यात्मिक जीवन की झलक आए बिना नही रहती है। लोग सोचते हैं कि ससार सम्बन्धी व्यवस्था पाप का मार्ग है परन्तु ऐसी कल्पना न रखिए। ससार सम्बन्धी व्यवस्था मे भी यदि नैतिकता अपनाई जाये और आध्यात्मिक दृष्टि-बिदु को लेकर चला जाये तथा वहा भी शुभ भावना है तो आप पुण्य अर्जित कर सकेगे। इस प्रकार से आध्यात्मिक जीवन व्यवस्थित होगा तो धर्म का भी सचय होगा।

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ७



# आनन्दानुभूति

दुख दोहग दूरे टल्या रे, सुख संपदशुं भेट,
धींग धणी माथे कियो रे, कोण गंजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारा सिध्या वांछित काज ।

प्रार्थना की शब्दावली मे आज परमात्मा के नाम का परिवर्तन आ रहा है। अलग-अलग नामो से जब अलग-अलग कविता की पंक्तिया प्रभु की स्तुति के प्रसग से बन जाती हैं तो उन्ही नामो के साथ उनका उच्चारण होता है।

'विमल' भी एक तीर्थंकर भगवान का नाम है। यहाँ 'विमल' शब्द सज्ञावाची बन गया है और इसका उच्चारण करने से एक ही तीर्थंकर का बोध होता है। परन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि से, जितने सिद्ध भगवान् हैं—उन सब का इसमे ग्रहण हो जाता है। नाम जब 'विमल' है तो व्युत्पत्ति यह बनती है कि— 'विगत मल यस्य स विमल ।' जिनमे से मल निकल गया है, जिनकी अन्तश्चेतना मे से मल का सर्वथा नाश हो गया है, ऐसे विमल परमात्मा हैं। यह एक ही परमात्मा का नाम नही परन्तु जितनी भी आत्माओ ने अपने अन्त करण के काम, क्रोध, मद, मत्सर रूपी मल को सर्वथा समूल नष्ट कर दिया है, उन समस्त आत्माओ का ग्रहण इस 'विमल' शब्द से होता है और उनका स्मरण होना अध्यात्म के लिए प्रेरणा देने वाला है।

मानव यदि परमात्मा के विमल स्वरूप को समझ कर अपनी आत्मा के लिए 'विमल' को स्वामी के रूप मे ग्रहण करता है तो उत्तम है। स्वामी का यहा तात्पर्य है कि आत्मा का सर्वोपरि स्वरूप

विमल ही है और सर्वोपरि स्वरूप को स्वामी की संज्ञा भी दे सकते है। इस सर्वोपरि विमल स्वरूप को सर्वोपरि रखते हुए प्राचीन भाषा मे स्वामी को 'धणी' के रूप मे पुकारा गया है। आज भी कुछ ग्रामीण क्षेत्रों मे स्वामी को धणी के नाम से कहा जाता है।

यह कविता उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ की है। इसकी पक्तियो मे भी इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

कवि ने अति उल्लास के साथ अपनी अतश्चेतना की वाणी व्यक्त की है। ये दु ख और दुर्भाग्य आदि जितने भी आत्मा को दबाने वाले मलिन तत्त्व हैं, वे सबके सब दूर भाग गये, आत्मा के समीप नही रहे। आत्मा के पास जब तक दु ख और दुर्भाग्य रूप तत्त्व रहेगे, तब तक आत्मा के आत्मप्रदेश उनसे भरे रहेगे। चाहे वे मलिन हो या अच्छे हों परन्तु किसी भी स्थान पर कुछ रहने का प्रसग है तो मलिन तत्त्व से भी वह स्थान भरा रह सकता है। जब मलिन तत्त्व हटेगे तब वहा अच्छे तत्त्व रह सकेंगे। आत्मा के स्वरूप की अवस्था मलिन तत्त्वो से दबी हुई थी। मलिन तत्त्व दु ख, दुर्भाग्य रूप से आत्मा को घेर कर खडे थे। परन्तु वे हटे तो उनके स्थान पर सुख और सपद् आए। दुर्गुण हटे तो सद्गुण आए। टकी मे से मलिन पानी हटा तो स्वच्छ पानी भर गया। वैसे ही आत्मा के उस पवित्र स्वरूप मे दु ख और दुर्भाग्य की कालिमा थी। जब वह हटी तो सुख और वास्तविक सपदा की पवित्र ज्योत्स्ना चमकने लगी।

जिसके जीवन मे इस प्रकार का पवित्र प्रकाश आता है, वह आह्लादित हुए बिना नही रहेगा। फिर उस आह्लाद के वशीभूत ह'कर परमात्मा के नाम के माध्यम से वह आत्मा बोल उठती है—"धीग धणी माथे कियो रे।" मैंने 'धीग' अर्थात्—जबरदस्त, जिससे बढ कर और किसी मे ताकत नही हो—ऐसे धणी को अर्थात् स्वामी को अपने सिर पर कर लिया तो फिर कौन अधम नर मुझ को सता सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मैंने आत्मा के सद्गुणो को निर्मल

स्वरूप के साथ सिर पर कर लिया अर्थात् उनको ही अपना लक्ष्य बना लिया। आत्मा के सहज गुण की विमलता के साथ आत्मा ही आत्मा की सर्वस्व बन गई।

इन पवित्र गुणो को ही स्वामी की उपमा दी जा सकती है, क्योंकि पवित्र गुणों से ही आत्मा परमात्मा बनती है। जिन गुणो से आत्मा परमात्मा बने, वे सर्वोपरि हैं और जो सर्वोपरि है, वही स्वामी है। उसको ही इस प्राचीन भाषा मे 'धणी' कहा गया है। आत्मा के सर्वोपरि गुण विमलता के साथ जिसको प्राप्त हो जाते हैं, उस आत्मा को कोई दबा नही सकता है।

'नर खेट' का मतलब है कोई भी अधम नर, कोई भी दुर्गुणी पुरुष। वह उस पवित्र-निर्मल आत्मा के स्वरूप वाले पुरुष को दबा नही सकता, पराजित नही कर सकता क्योंकि उसने निष्ठा के साथ अपने चरम लक्ष्य के रूप मे उन्ही सद्गुणो को अपना लिया है। इसलिये दुर्गुणो का वहा प्रवेश ही नही हो सकता है।

आज का मानव भी यदि विमलनाथ के स्वरूप को, उस निर्मल परम पवित्र गुणो को स्वामी के रूप मे चयन करना चाहे तो उसके लिये अवकाश देवे। परन्तु वे गुण आत्मा मे तभी प्रवेश करेंगे, जब कि आत्मा के साथ रहने वाला अति प्राचीन मलिन कचरा बाहर फेंक दिया जायेगा। दुर्गुण जब बाहर हटेंगे तो सद्गुणो का प्रकटीकरण होगा। उनका प्रकट होना ही सद्गुणो का प्रवेश है। यदि इन सद्गुणो का प्रवेश कराना है, परमात्मा के आदर्श स्वरूप को समक्ष रखना है तो हर समय, हर क्षण अपनी चेतना मे परमात्मा के निर्मल स्वरूप को ही देखते रहना चाहिये।

कभी-कभी मनुष्य यह सोच लेता है कि हम परमात्मा को देखना चाहते हैं परन्तु परमात्मा है कहा? परमात्मा करता क्या है? तर्कवादी युग मे तर्क का प्रादुर्भाव होता है परन्तु जहा तर्क का प्रवेश ही नही है, वहा भी वह तर्क करने की कोशिश करता है।

परमात्मा कहा है और वह क्या करता है, इस बात पर यदि कोई तर्क करे तो क्या वह परमात्मा के स्वरूप को समझ पाएगा ? तर्क तो मानसिक कल्पना का एक व्यापार है और मन की गति परमात्मा के स्थान तक पहुच नही सकती है । परमात्मा क्या करता है—यह हम देख नही पाते है । इसीलिये जब कभी ज्ञानी-जनो के समक्ष तर्क के प्रश्न आए अथवा शिष्य ने जब तर्क करना चालू किया तो गुरु ने उत्तर दिया—"तक्का तत्थ न विज्जइ, मति तत्थ न गाहिया ।" भाई ! तू क्यो तर्क करता है ? तर्क वहा नही चलेगा, मति का वहा प्रवेश नही होगा । मति तर्क की साथिन है । ये दोनों मन और इन्द्रियो के सहारे चलने के कारण सीमित है । सीमित तत्त्व असीम का पता नही लगा सकता ।

परमात्मा कहा है और क्या करता है ? इस प्रश्न का हल व्यक्ति लेना चाहता है । यदि इन प्रश्नों का उत्तर आ जाता है तो प्रत्येक तर्क-प्रधान व्यक्ति का कुछ समाधान बन सकता है और वह भी इस विषय मे कुछ आगे बढ सकता है। इस विषय की न्यूनाधिक रूप मे सर्वत्र चर्चा चलती है । चाहे धर्मस्थान हो, व्यापारिक क्षेत्र हो, राजकीय प्लेट-फार्म हो, कही कम तो कही ज्यादा, किसी-न-किसी रूप मे घूम-फिर कर यह प्रश्न मानव के मस्तिष्क मे चक्कर लगाता रहता है ।

आख्यानिका के अनुसार एक समय बादशाह अकबर के मस्तिष्क में भी यह प्रश्न पैदा हुआ कि दुनिया मे परमात्मा-परमात्मा तो सभी कहते है परन्तु परमात्मा है कहा और वह करता क्या है ? राजकीय कार्य समाप्त होने के पश्चात् बादशाह ने अपने बुद्धिमान दरबारी वीरबल से इस प्रश्न को पूछा । तब बीरबल ने निवेदन किया—"जहापनाह ! इस प्रश्न का उत्तर सप्ताह भर के बाद मिलेगा ।" बादशाह ने कहा, "अच्छा !"

राजकीय कार्य करने के बाद सध्या के समय जब बीरबल

अपनी हवेली पहुंचा तो उस समय भी उसके मस्तिष्क मे वही प्रश्न घूम रहा था। उसने सोचा कि इस प्रश्न का समाधान कैसे किया जाये ? उसने कई व्यक्तियो के सामने इस प्रश्न को दोहराया परन्तु कोई भी इसका उत्तर नही दे सका। इस प्रकार की स्थिति मे कुछ दिन और निकल गए।

एक दिन वीरबल बगीचे मे से गुजर रहा था कि सहसा एक अनाथ बालक की ओर उसकी दृष्टि गई। उसने देखा कि वह बालक वहा एक-एक दाने को चुग रहा है और खाता जा रहा है। उसके सामने कुछ अनाज बिखरा हुआ था। परन्तु वह उसे बटोरता नही था और कुछ ही दाने उठा कर अपने मुह मे रख लेता था।

वीरबल ने पूछा, "अरे ! तू यह क्या कर रहा है ?" उस अनाथ लडके ने कहा, "मैं उदर की पूर्ति कर रहा हू। पिता बचपन मे ही छोड कर स्वर्ग सिधार गए और माता ने भी मेरा साथ नही दिया। वह भी परलोक सिधार गई। समाज के व्यक्ति भी मेरी ओर देखने वाले नही मिले। कोई मानव मेरा सरक्षण करे, ऐसी स्थिति नही बनी। परन्तु दो हाथो के बीच जब पेट है तो उसकी पूर्ति तो करनी ही पडती है। मैं उसी के लिये ये दाने चुग रहा हू।

वीरबल ने कहा, "बच्चे ! जब इतना अनाज बिखरा हुआ है तो तू इसको इकट्ठा करके और फिर व्यवस्थित रूप से रोटी बना कर क्यो नही खाता है ?" बालक ने कहा, "मैं इस प्रकार की गफलत मे रहने वाला नही हू। देखिए ! समय की गति बडी विचित्र है। मैं पहिले इसको बटोर कर सगृहीत करूँ और फिर रोटी बना कर खाने की कोशिश करू, कदाचित् इसके बीच मे ही कोई बाधा आ सकती है। इसलिये एक-एक दाना चुग रहा हू।"

ऐसा सुन कर वीरबल ने सोचा कि यह बालक बुद्धिमान प्रतीत हो रहा है। इसके कथन से मानव-जीवन की शुभ झाकी मिल रही है। इन्सान को सारा समय मे ही न लगा कर उपयोग

करते हुए चलना चाहिये। जो मात्र सग्रह मे ही लगे रहते है और उपभोग के लिए सोचते है कि आज करेंगे, कल करेंगे और बीच मे ही आयुष्य समाप्त हो जाये तो उनके पाप का सचय तो हो गया परन्तु उपभोग नही हो पाया। इस बच्चे से बडी भारी शिक्षा मिल रही है। यह ठीक ही कह रहा है कि जितना मिले उसे खाया जाए और सग्रह मे न पडा जाये। सभव है, यह बच्चा बादशाह के प्रश्न का उत्तर भी दे सकेगा।

गरीबी मे रहने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क मे कई तरह की बातों का अनुभव होता है। उसके मस्तिष्क मे कई ऐसी बाते रहती है, जो सुख मे रहने वालो और गादी-तकियो के सहारे बैठने वालो के मस्तिष्क मे जल्दी नही बैठती।

बीरबल ने उस बालक से कहा, "तू यहा क्यो बैठा है? मेरे साथ चल। मै तुझे खाना खिलाऊगा।" यह सुन कर वह बीरबल के साथ चलने को तैयार हो गया। हवेली पर पहुच कर बीरबल ने उसे खाना खिलाया और अच्छे कपडे भी पहिनने को दिये। इस प्रकार उसे इज्जत के साथ बिठाया और फिर कहा, "तुम्हारे अदर बुद्धि का जो यह विकास हुआ है, इस विकास मे तुम्हे सहायक कौन मिला? क्या तुमने किसी अनुभवी पुरुष के साथ रह कर यह अनुभव प्राप्त किया है?"

लडके ने उत्तर दिया, "नही! नही! मुझे अनुभवी पुरुष का सहयोग कहा मिला? मुझे तो अपने जीवन से ही कुछ अनुभव मिला है और मैं जीवन की ही बात सोचता हू।" इस पर बीरबल ने कहा, "लडके! क्या तू बादशाह के एक प्रश्न का उत्तर दे सकता है?" लडके ने कहा, "कहिये, वह प्रश्न क्या है?" बीरबल ने कहा, "प्रश्न यह है कि परमात्मा कहा है और वह क्या करता है?"

उस अनाथ बालक ने प्रश्न सुन कर कहा—"मैं इसका उत्तर दे सकता हू। आप निश्चिन्त रहिये। जिस रोज बादशाह को उत्तर

देना हो, उस रोज आप मुझे उनके पास ले चलिये।"

सातवें दिन बीरबल उस बालक को लेकर दरबार में पहुँचा। राजकीय कार्य पूरा होने के पश्चात् बादशाह ने बीरबल से अपने प्रश्न का उत्तर पूछा तो बीरबल ने निवेदन किया, "जहापनाह, आपके इस प्रश्न का उत्तर तो यह एक छोटा बालक भी दे सकता है।" तब बादशाह ने कहा, "सचमुच, क्या यह बालक हमारे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा? बीरबल ने कहा, "हा जहापनाह!"

इस पर बादशाह ने बालक से पूछा, "क्या तू हमारे प्रश्न का उत्तर दे सकता है? बालक ने अदब से सलाम कर के कहा, 'हा जहापनाह!" बादशाह ने कहा, "अच्छा! बतलाओ, परमात्मा कहा है और वह क्या करता है?" बालक ने निवेदन किया, "जहापनाह एक कटोरे में दूध मगवाइये।" बादशाह के इशारे पर दूध का कटोरा आ गया और अनुचर ने उसे बालक के सामने रख दिया। बालक कुछ चिन्तन करता हुआ दूध में उगली डाल कर चखता है और बादशाह के सामने देखता है।

बादशाह ने कहा, "अरे, तू यह क्या कर रहा है? हमारे प्रश्न का उत्तर दे कि भगवान कहा है?" इस पर लड़के ने कहा, "हुजूर! आपके प्रश्न का उत्तर हो गया।" बादशाह ने उत्सुकता से पूछा, "अरे! क्या हुआ? हम तो नहीं समझे।"

लड़के ने कहा, "यदि आप नहीं समझे तो मैं खुलासा करता हूँ। जब मैं छोटा बच्चा था, तब मेरी माता ने मुझे मक्खन की डली दी थी। मैं उस मक्खन को खाने लगा। उस समय मेरे मन में प्रश्न उठा कि यह मक्खन किस वृक्ष का फल है? और मां इसे कहा से मोल कर लाई है? इस प्रकार मेरे मन में जिज्ञासा हुई और मैंने मा से पूछ ही लिया कि यह मक्खन किस वृक्ष का फल है?' मा ने कहा, "बेटा, यह वृक्ष का फल नहीं, यह तो दूध में से निकलता है।"

बालक की यह बात सुन कर बादशाह ने सोचा कि यह प्रश्न का क्या उत्तर देगा ? इसको तो यह भी पता नही कि मक्खन भी कही वृक्ष पर लगता है ?

लडके ने आगे कहा—"जहापनाह, मेरी माता ने कहा था कि मक्खन दूध मे से निकलता है । आपने दूध तो मंगवाया परन्तु वह मुझे इसमे मिल नही रहा है ।" बादशाह ने कहा, "मक्खन दूध में से निकलता है, तेरी माता का यह कथन सच है । परन्तु तेरे अन्दर दिमाग की कमी है । दूध मे मक्खन भरा हुआ है परन्तु यह उगली से नही निकल सकता है । दूध को सस्कार देकर जमाना पडता है और फिर विलौना करके मक्खन निकाला जाता है ।"

लडके ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "जहापनाह ! क्या दूध मे मक्खन नही है ?" बादशाह ने कहा, "इसमे तो है ही ।" तब लड़का बोल उठा, "परन्तु वह सामने नजर नही आ रहा है ।" बादशाह ने कहा, "हा ! वह नजर नही आ रहा है ।"

इस पर बालक ने साहसपूर्वक कहा, "जहापनाह ! आपके प्रथम प्रश्न का उत्तर इसमे हो गया । आप पूछते हैं कि भगवान कहा है ? तो सुनिये कि भगवान आपकी आत्मा मे है । दूध मे मक्खन है, यह आप स्वय फरमा रहे हैं, वैसे ही आपकी आत्मा मे भगवान है और आप फरमाते है कि दूध को सस्कार करने से, जमाने से और बिलौना करने से फिर मक्खन बाहर आता है, वैसे ही इस आत्मा में सस्कार करके मथन किया जाये तो आत्मा मे परमात्मा की अनुभूति हो सकती है ।

ऐसा उचित उत्तर सुनते ही बादशाह को निश्चय हो गया कि बात सच है । बालक ने ठीक ही कहा है कि जैसे दूध के कण-कण मे मक्खन है, तिल मे तेल है, लकडी मे अग्नि है और फूल मे इत्र है, वैसे ही आत्मा मे परमात्मा का स्वरूप समाया हुआ है ।

बादशाह के समाधान की तरह मैं समझता हूं कि आपका भी समाधान हुआ होगा । आपके मस्तिष्क मे ऐसा प्रश्न उठा या नही,

यह आप स्वयं जानें।

बन्धुओ, बादशाह की एक जिज्ञासा का तो समाधान हुआ परन्तु दूसरी जिज्ञासा शेष रह गई थी। बादशाह ने कहा, "लडके, भगवान कहाँ रहते हैं, यह तो पता लग गया। परन्तु भगवान करते क्या हैं, इसका क्या उत्तर है? तुमने आत्मा को भगवान बतलाया। परन्तु आत्मा पाप कर रही है तो क्या भगवान पाप करता है, अनीति करता है? क्या भगवान किसी को सता रहा है? लोग तो एक-दूसरे को सता रहे हैं, वे लड रहे हैं, मर-कट रहे हैं। क्या ये कर्म भी भगवान करता है?"

बालक ने नम्रता से निवेदन किया, "जहाँपनाह, आप अपनी पोशाक और शृङ्गार सजाते हुए किसका अवलम्बन लेते हैं? हमारी पोशाक ठीक है या नहीं, हमारी आकृति साफ है या नहीं, इसकी साक्षी आप किससे करते हैं?" बादशाह ने प्रत्युत्तर में कहा, "दर्पण से। दर्पण को सामने रख कर हम अपनी आकृति देख लेते हैं।" बालक ने फिर पूछा, "जहाँपनाह! दर्पण आपके लिए क्या करता है?" बादशाह ने कहा, "अरे! दर्पण क्या करेगा। दर्पण में देख कर हम स्वयं कर लेते हैं।"

बालक ने कहा, "जहाँपनाह! आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर भी हो गया। दर्पण स्वच्छ है। वह एक स्थान पर रखा है और कुछ भी नहीं कर रहा है। आप अपनी आकृति उसमें देख कर अपने को सुन्दर बनाने का प्रयास करते हैं। किन्तु वह दर्पण कुछ नहीं करता है, सब कुछ हम ही करते हैं। आप भगवान को दर्पण के समान स्वच्छ मान लें। प्रभु तो दर्पण की तरह स्वच्छ हैं। आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को देख कर अपने स्वरूप की तुलना करें। अगर अपने अन्दर की कालिमा को दूर हटा देंगे तो परमात्मा का स्वरूप दिखाई देगा। परमात्मा को सामने रखे बिना आप कालिमा नहीं मिटा सकते हैं, आत्मा को पवित्र बनाने में समर्थ नहीं बन सकते हैं।

और ऐसे कार्य के द्वारा परमात्मा का अकन कर सकते है।" बादशाह के प्रश्न का समाधान ठीक ढग से हो गया।

बधुओ, यह शक्ति हरएक आत्मा मे है। परन्तु ऐसी शक्ति आप तभी प्राप्त कर सकेगे, जब आप सत्पुरुषार्थपूर्वक भगवान के निर्मल स्वरूप का ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को उन गुणो से विभूषित करने का प्रयास करेगे। यदि आप ऐसा प्रयत्न करेगे तो आपके जीवन मे दुख और दुर्भाग्य नही रह सकेगे। आप भी सत्-चित्-आनन्दघन रूप परमात्मा बन जायेगे।

मैं वर्तमान जीवन की थोडी सी बात बता दू। जैसे कोई व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक या बौद्धिक श्रम करता हुआ थक जाता है, तब उसे आराम करने की इच्छा होती है और वह गाढी निद्रा मे सो जाता है। उस प्रगाढ निद्रा मे न इन्द्रिया जाग रही है और न मन स्वप्न देख रहा है। सब शारीरिक अवयव शिथिल पडे रहते हैं। उस अवस्था से जब मनुष्य जागता है, तब उससे पूछते है, "कहो भाई! कैसी नीद आई?" वह कहता है कि बड़ा आनद रहा। फिर पूछते है, "अरे भाई! कैसा आनन्द रहा?" वह कहता है, "कुछ मत पूछिये। आज तो ऐसी निद्रा आई कि सारी थकावट दूर हो गई और मुझे बहुत ही आनन्द का अनुभव हुआ।" उस आनन्द का वर्णन वह नही कर सकता।

उस आनन्द के अनुभव की पूरी अभिव्यक्ति वह नही कर पा रहा है। तब प्रश्नकर्ता पूछता है कि क्या तुमने मीठा भोजन किया? वह कहता है कि मीठा भोजन कुछ नही किया।

"क्या सुन्दर रूप देखा?"

"नहीं, वह भी नही देखा।"

"क्या कोई सुगध सूघी?" "वह भी नही सूघी।"

"क्या मधुर गाना सुना?" "वह भी नही सुना।"

"क्या किसी का स्पर्श किया?" "वह भी नही किया?"

"तो क्या तुमने स्वप्न देख कर आनन्द लिया ?"

"नहीं, स्वप्न भी नहीं देखा। फिर भी मुझे बड़ा आनन्द आया।"

बतलाइये ! वह आनन्द क्या है ? न उसमें खाना-पीना है, न सुनना है, न स्पर्श है और न स्वाद की ही सृष्टि है । किन्तु आनन्द का अनुभव करने वाली जो आत्मा है, वह उस आनन्द के अनुभव की अभिव्यक्ति नहीं कर सकती है, मात्र उसका अनुभव ही करती है ।

आप भी यदि इसी आनन्द की अनुभूति करना चाहते हैं तो काम, क्रोध, मान, माया और राग द्वेष से हट कर आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना के साथ समतामय जीवन को ढालने की कोशिश करें, तभी आप इस आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करने में समर्थ बन सकते हैं और मोक्ष के आनन्द के अनुभव को भी प्राप्त कर सकते हैं ।

मोक्ष में क्या आनन्द है ? इसका लेखा-जोखा आप इन्द्रियों से नहीं ले सकते हैं । आपकी इन्द्रियां कठिन हैं। इस सम्बन्ध में जिह्वा मौन रह जाती है। यह आनन्द तो आत्मा की अनुभूति से ही लिया जा सकता है । इस आनन्द की तुलना उस [illegible] निद्रा की [illegible] । यदि आपने उसे साधना के बल से प्राप्त किया तो [illegible] और दुःख-दारिद्र्य से दूर हो सकता है । इस विषय में [illegible] करें ।

दिनांक—

[illegible]

# आत्मा की विमलता

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु' भेंट,
धीग धर्णी माथे कियो रे, कौरण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयरण आज, मारा सिध्या वाछित काज ।

विमल प्रभु के विमल स्वरूप को पाने के लिये अन्तरात्मा का स्वर मुखरित हो उठता है । विमल शब्द इस आत्मा को अत्यन्त प्रिय है । जिसका स्वभाव मूलत· जैसा होता है, उसको वह अच्छा लगता ही है, चाहे वह किसी पर्दे की आड़ मे हो या किसी स्थल पर छिपा हुआ हो । वह स्वयं उसको दीख नही पाता हो, फिर भी उस शब्द को सुनता है तो सहसा उसे प्रमुदित भावना आए बिना नही रहती है ।

आत्मा का मूलत स्वभाव विमल अर्थात् मल रहित रहता है । परन्तु वर्तमान मे वह कर्म-मल से युक्त होने के कारण अपने शुद्ध स्वभाव को प्रगट नही कर पा रही हे । काम क्रोध की तुच्छ भावनाये, मद-मत्सर की विषम चिनगारिया इस आत्मा के समक्ष प्रतिक्षरण आती रहती है । इस स्थिति मे अपने स्वरूप का ध्यान नही हो पा रहा है । परन्तु फिर भी जब विमल शब्द सुनने को मिलता है तो अपने आपको विमल बनाने के लिये आत्मा उस तरफ आकर्षित होती हे ।

मन के चारों तरफ विकारों ने घेरा डाल रखा है । मानसिक कल्पनाये अधाधुध रूप मे चल रही हैं । इन मानसिक उलझनों के बीच मे रंग-बिरगी मानसिक दुनिया ही दृष्टिगत होती है । आत्मा के निर्मल स्वरूप के दर्शन वर्तमान मानसिक दशा मे नही हो पाते

है। फिर भी विमल शब्द का अर्थ इस आंधी और तूफान के मानस को चीर कर आत्मा की आन्तरिक दशा को छूना है। इसीलिये आत्मा इन सब झंझावातों के बीच में रहती हुई भी अपने मूल स्वभाव की विमलता को ही पसन्द करती है और विमल स्वरूप की ओर आकर्षित होती है। यदि इस आकर्षण में स्थायित्व आ जाए तो आत्मा अपने वांछित लक्ष्य को पा सकती है।

प्रार्थना की कोई-सी भी पंक्तियां उच्चारण की जाये परन्तु मानसिक उलझनों को हटा कर अपने स्वरूप को परमात्मा के विमल स्वरूप के तुल्य देख लिया जाए तो वह परमात्मा के दर्शन का रूपक होगा। पंक्तियों के बीच में भी वही झांकी आ रही है—'विमल जिन दीठा लोयण आज, म्हारा . . . ।"

इस वक्त 'लोचन' देखने का प्रसंग क्या है? ज्ञानियों का कथन है कि वर्तमान में इन्सान की जो ज्ञान-शक्ति चल रही है, वह सिर्फ इस विस्तार रूप तत्त्वों तक सीमित है। ये नेत्रों से सिर्फ चर्म-चक्षुओं को समझते हैं और व्यवहार-दृष्टि में ये ही लिये जाते हैं। परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से जो लोचन हैं, वे केवलज्ञान, केवल-दर्शन हैं। जब आत्मा को केवलज्ञान और केवलदर्शन उपलब्ध होता है परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण दर्शन की अवस्था बनती है, उस वक्त ही वह दिव्य नेत्र—"जिन" के नेत्र देख पाती है।

'जिन' के [illegible] और [illegible] की परिपूर्णता के रूप में हैं अथवा केवलज्ञान और [illegible] की परिपूर्णता के रूप में हैं। इन नेत्रों को देखने के लिये प्रारम्भ से प्रयत्न किया जावे और [illegible] किया जावे तो एक दिन [illegible] है। [illegible] भी है—"[illegible]" [illegible]

सिद्ध होगे अर्थात् भव्यात्मा जितना भी प्रयास आत्मिक-शुद्धि की दृष्टि से कर रही है, उसका वह प्रयास उस रोज परिपूर्ण मनोरथ मे बदल जाएगा और वह अपने आपका पूर्ण विकास करके परमात्मा के परिपूर्ण विकास को देख पाएगी। यह लक्ष्य की वस्तु है। परन्तु हर व्यक्ति तत्क्षण इस वस्तु को नही देख पाता है।

प्रभु महावीर ने गौतम से कहा कि—

न हु जिणे अज्ज दिस्सइ, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए।

(उत्तराध्ययन १०/३१)

हे गौतम! आज तुझे 'जिन' नही दिख रहे है परन्तु 'जिन' का दिखाया हुआ मार्ग दिख रहा है।

यह कितनी आश्चर्यकारी बात है! जिन भगवान केवलज्ञान से युक्त अलौकिक प्रकाश को लेकर अतिशय-सम्पन्न शरीर से विराजे हुए है। गौतम गणधर 'जिन' के चरणो की उपासना कर रहे है, प्रश्न के साथ ही चरणो को छूते हुए उनके नेत्रों का अवलोकन कर रहे है, परन्तु उस वक्त भी वीतरागदेव कह रहे हैं कि तुझे 'जिन' नही दिख रहे है। यह परस्पर विरोध दिखाने वाली बात कैसे? परन्तु पैनी दृष्टि से आध्यात्मिक चिंतन किया जाये तो बात बिल्कुल सही है। गौतम स्वामी छद्मस्थ थे। वे केवलज्ञान के प्रकाश से युक्त नही थे और केवलज्ञानी भगवान की 'जिन' अवस्था राग-द्वेष से रहित थी।

आत्मा की उस पूर्ण शुद्ध अवस्था को छद्मस्थ व्यक्ति के नेत्र देख नही पाते है। इसलिये वे 'जिन' के साक्षात् रहते हुए भी उनके दर्शन नही कर पाते है। उन्हे जो दर्शन होते है, वे अनुमानित 'जिन' के होते है। वे उनके दिव्य अतिशय के साथ दिव्य वाणी को श्रवण करके दिव्य नय पथ को अगीकार करके चलते है।

एम. ए की कक्षा का लक्ष्य निर्धारित करते हुए भी यद्यपि प्रथम कक्षा मे रहने वाला विद्यार्थी एम. ए. की कक्षा की योग्यता

नही देख पाता है परन्तु एम ए की योग्यता का दृढ सकल्प जब मन मे रहेगा तो वह सबसे पहिले प्रथम कक्षा मे ही प्रवेश करेगा, वर्णमाला ही सीखेगा। फिर वर्णमाला के साथ अक्षरो की सयुक्त वाक्यावली सीखेगा और उसके माध्यम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि कक्षाओ को पार करता हुआ क्रमिक रूप से आगे बढेगा। यदि वह एम. ए. की कक्षा मे प्रवेश करना चाहता है परन्तु प्राथमिक वर्णमाला का ज्ञान प्राप्त नही करता है तो वह अन्य कक्षाओ को लाघ नही सकेगा और प्राथमिक योग्यता प्राप्त किए बिना कोई एम ए की योग्यता प्राप्त नही कर सकता। परन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर होता है, वह क्रमिक विकास करते हुए एक दिन अवश्य ही एम ए की कक्षा का पूरा अनुभव कर लेता है। वैसे ही यदि आत्मा एम. ए के तुल्य अपना लक्ष्य विमलता को प्राप्त करने का बनाती है तो वह विमलनाथ प्रभु के मार्ग पर गमन करेगी। वह अपने विमल स्वरूप पर आने वाले बाह्य आवरणो को हटाती रहेगी।

हर एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने बहुमूल्य रत्न की रक्षा इसी ढग से करता है। जिसका 'विमल' लक्ष्य बन गया है, वह मनुष्य अपनी आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयास करेगा। उसका प्रथम चरण यह होगा कि वह चिन्तन करे कि आत्मा मे मलिन भावनायें किन-किन कारणो से आ रही हैं, आत्मा किन-किन तरीको से मलिन बन रही है ? मेरा लक्ष्य यह होना चाहिये कि आत्मा के ऊपर आने वाली मलिनता को हटा कर उसे विमल बना लू। परन्तु यह कार्य तभी कर सकूगा जबकि मलिनता को बढाने वाले कारणो को पहिले से ही रोक दू।

यदि मनुष्य अपनी आत्मा के दिव्य विमल स्वरूप को देखना चाहे तो सबसे पहिले व्यर्थ की मलिनता को रोकना जरूरी है। व्यर्थ की मलिनता का तात्पर्य समझ लेना चाहिये। मनुष्य गृहस्थ-अवस्था मे रहता हुआ अपनी घरेलू समस्याओ को हल करना चाहता है

क्योंकि उस पर परिवार की जिम्मेदारी है और समाज तथा राष्ट्र का उत्तरदायित्व भी है। यदि वह इन सब जिम्मेदारियो को निभाता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढना चाहता है तो परिवार के सरक्षण के लिये, समाज की सुव्यवस्था के लिये और राष्ट्रीय जीवन की पवित्रता के लिये उसे कुछ कार्य करना पड़ता है। आवश्यकतानुसार अर्थोपार्जन के लिये भी व्यवसाय करना पडता है तो उसमें भी कुछ ऐसी क्रियाये हो जाती हैं कि जिनके माध्यम से मलिनता आत्मा के साथ सयुक्त हो जाती है। गृहस्थ कितना ही प्रयत्न करे परन्तु वह अपने विमल स्वरूप को सर्वथा कायम नही रख पाता है। फिर भी इन कारणो से आत्मा मे जो मलिनता आ रही है, वह अर्थ-दड माना जायेगा। परन्तु परिवार आदि की जिम्मेदारियो के निर्वाह करने मे जिन क्रियाओ का कोई प्रयोजन नही है तथा राष्ट्र, समाज और परिवार के धरातल पर जिनकी जरा भी आवश्यकता नही है, उन प्रवृत्तियो को तो सबसे पहिले त्याग देना चाहिये।

मनुष्य रास्ते मे चलता है और रास्ते मे कीचड है तो वह यह नही चाहेगा कि मेरे पैर कीचड मे भरे। यदि कीचड उछलेगा तो कपड़ों के भी लगेगा। वह इसकी सावधानी रखता हुआ कार्य करेगा तो कीचड से बचता रहेगा। परन्तु सावधानी रखते हुए भी कदाचित् उसके पैरो मे कीचड लग जाये और कपडो के भी छीटे लग जाये तो नही चाहते हुए भी वह लाचारी से उन्हे बर्दाश्त करेगा। वह सोचेगा कि इसके विना मेरा आगे का कार्य नही हो सकता और ऐसी स्थिति मे उसका यह कार्य नाजायज नही कहा जा सकता है। परन्तु इसके विपरीत जिस व्यक्ति को कीचड मे पैर देने की क्रिया करने का प्रयोजन ही नही है और फिर भी यदि वह इरादतन कीचड मे पैर रखता है, अपने धुले हुए कपडो को खराब करता है और शरीर को भी कीचड मे भरता है तो उस पुरुष को आप क्या कहेगे? आपकी दृष्टि मे वह पुरुष कैसा होगा? उसे आप बुद्धिमान कहेगे

या इसके विपरीत ?

आप भले ही मेरे सामने बोलें या न बोले परन्तु मन मे अवश्य सोचेंगे कि इस तरह कार्य करने वाला व्यक्ति समझदार नही कहा जा सकता है। वह जीवन के महत्त्व को जरा भी न समझते हुए व्यथ ही अपने पैर और कपडे कीचड से भर रहा है।

मनुष्य इस बाहरी कीचड से तो बच सकता है और बचने का प्रयत्न भी कर सकता है परन्तु आतरिक जीवन की ओर लक्ष्य नही होने से वह अपनी आत्मा को निरर्थक पापो के कीचड से लिप्त कर रहा है। वह व्यथ के पापो को रोक नही रहा है। इसलिए आज के इन्सान की जिन्दगी इन पापो से ज्यादा मलिन बन रही है। इस तथ्य को समझे। वर्तमान जीवन को व्यर्थ के झझावातो से बचाना चाहते है तो व्यर्थ के पापो से बचने का प्रयत्न करे। अत गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए आपका कर्तव्य है कि आप अपनी आँखो आदि इन्द्रियो और मन का प्रयोग सदुपयोगपूर्वक उसी स्थान पर करने की कोशिश करे, जहा आवश्यकतावश गृहस्थ-जीवन मे रहते हुए करना पडता हो।

आपका यह भव्य जीवन एक बहुमूल्य रत्न के तुल्य है। इस बहुमूल्य जीवन को उन्नत बनाने के लिये भगवान महावीर ने श्रावक के लिये अहिंसा अणुव्रत आदि व्रतो का उपदेश देते हुए उनका प्रतिपादन किया है। साधु तो अहिंसा व्रत का पूर्णरूपेण पालन कर सकता है परन्तु गृहस्थ उसका पूर्णरूपेण पालन नही कर सकता। उसके लिए यह कहा गया है कि निर्दोष, निरपराधी, चलते-फिरते जीवो की सकल्प से हिंसा नही करे। इतने मात्र से भी आप अहिंसा अणुव्रत को धारण करने वाले बन सकते है। यहा जो निरपराध विशेषण दिया गया है, उसका यह मतलब हुआ कि आप जो परिवार का भरण-पोषण करते हुए चल रहे है, सामाजिक क्षेत्र मे भी कार्य कर रहे है और यथासभव राष्ट्रीय क्षेत्र मे भी कार्य कर रहे है तो इन

कार्यों को करते हुए भी आपके बीच मे कोई बाधा नही आ सकती और आप शाति से रह सकते है । अत ऐसी अवस्था मे किसी निर्दोष पशु आदि पर इरादे से प्रहार न करे क्योकि वहा कोई पारिवारिक, सामाजिक या राष्ट्रीय प्रयोजन नही है । इसलिए इसका त्याग करे।

यहा निरपराधी विशेषण लगाया गया है अर्थात् जो कोई अपराध नही कर रहा है । सभवत आप डाकू क्षेत्र मे रह रहे है । एक आदमी विस्तारवादी बन कर आपके परिवार को नष्ट करना चाहता है । वह आपको सकट मे डालना चाहता है अथवा किसी समय समाज या राष्ट्र पर कोई खतरा आ रहा है, उस वक्त ऐसा करने वाला अपराधी बन जाता है क्योकि वह व्यक्ति आपके ऊपर जबरदस्ती से आक्रमण कर रहा है । आप तो उस पर आक्रमण करना नही चाहते है । आप सह-अस्तित्व के साथ रहना चाहते है । हम, हमारे पडौसी और समाज के लोग भी शाति से रहे । हम किसी पर आक्रमण नही करे । फिर भी कोई आक्राता आक्रमण के लिये आ रहा है तो उस आक्राता को भी आप मन मे मारने का सकल्प नही रखते है परन्तु आत्म-रक्षा की भावना अवश्य रखते है । इसका मतलब है कि हम अपने परिवार की रक्षा के लिये उसको हटा रहे है । उसको मारने का हमारा सकल्प नही है । यदि आक्राता रुक जाता है तो उसको मारने का प्रयोजन नही रहेगा । इसलिए आप साम, दाम और भेद की नीति से आक्राता को समझाने की कोशिश करेगे परन्तु फिर भी यदि वह नही समझ रहा है तो आप चौथी नीति दड को लेकर सघर्ष कर रहे है । आप उस समय विरोधी हिसा कर रहे है । अत. आपने जो अणुव्रत ग्रहण किया है, उसमे भग नही लगता है, क्योकि इसमे इस अवस्था की छूट है । आपका मारने का सकल्प नही है ।

एक डॉक्टर मरीज को ऑपरेशन-हॉल मे ले जाता है और ऑपरेशन के लिये छुरी से उसके पेट आदि को चीरता है । ऐसा करते समय क्या वह मरीज को नष्ट करने के लिये पेट चीर रहा है या

उसका रक्षण करने के लिये चीर रहा है ? वह उसको मारने के लिये छुरी नही चला रहा है । वह तो उसके पेट आदि मे जो फोडा है, जिससे कि उसकी जिंदगी खतरे मे है, उससे उसको बचाने के लिये छुरी चला रहा है । उसका लक्ष्य मारना नही है परन्तु रोग को हटाना है ।

इसी प्रकार श्रावक भी चतुर डॉक्टर की तरह होता है । वह सोचता है कि इस आक्राता व्यक्ति को तृष्णा का एक फोडा हो गया है या उसमे व्यर्थ की लालसा का रोग पैदा हो गया है । इसके कारण वह शाति भग करता हुआ मेरे परिवार पर, समाज या राष्ट्र पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस करना चाहता है । ऐसी स्थिति मे श्रावक उस व्यक्ति को मारने के लिए नही परन्तु उसके रोग को समाप्त करने के लिए और रोग का असर परिवार, समाज या राष्ट्र पर से दूर करने के लिये तैयार होता है । जो ऐसा रोग दूर करने के लिये तैयार होता है तो वह इस कार्य को करते हुए हिंसा के कार्य मे भी प्रवृत्त हो सकता है । परन्तु ऐसी स्थिति मे उसका यह हिंसा का कार्य अति मद माना जायेगा ।

श्रावक के लिये यह व्रत कठिन नही है परन्तु इसको लेकर ही यह सोच ले कि हम बहुत बडे धर्मात्मा वन गए तो इतनी वडी कल्पना करने की भी आवश्यकता नही है । आपने व्यर्थ के पाप को छोडा है तो निरपराध और निरपेक्ष जीवो को मारने की कोशिश नही करना चाहिये । इसका मतलब है कि परिवार या समाज की रक्षा के लिये या जोवन-निर्वाह के लिये यदि खेती करनी पड रही है और उसमे हिंसा हो रही है तो उसकी भी आपको छूट इसलिये है कि वह अपेक्षा से है किन्तु सकल्प के साथ नही है । उसमे यदि आपका मानसिक सकेत इसी ढग का है तो उसका उतना पाप लगेगा ही ।

आपका एक बच्चा है और वह कहना नही मान रहा है । शिक्षा देने की दृष्टि से आपने उसको एक थप्पड लगा दिया । यह मारना तो हुआ परन्तु व्रत का भग करने वाला नही है । यह अपेक्षा

से है। यदि इरादतन मारने की दृष्टि से मारते या पीटते है तो व्रत-भग हो जाता है।

रास्ते मे चीटी चल रही है। उसने आपका अपराध नही किया है और न वह आपका कुछ बिगाड़ ही रही है। फिर भी यदि चलती हुई चींटी को आप मारने की भावना से मार देते है तो आपका जो प्रथम अहिसा अणुव्रत है, वह टूट जाता है।

इसी प्रकार आप खेती कर रहे है और उसमे हजारो जीव मर रहे है किन्तु उनको मारने का आपका इरादा नही है। खेती करना है और वह भी इसलिए कि परिवार का निर्वाह हो सके तो उसमे सापेक्ष हिंसा है, वह सकल्पी हिंसा नही है। इसमे प्रथम अणु-व्रत अहिंसा नही टूटता है। हा ! उनको आप इरादे से मारेंगे तो उसमे वह हिंसा लगेगी।

इन्सान इस दृष्टिकोण को खयाल मे रखता हुआ व्रत-धारण करे तो दुनिया भर के पाप रुक सकते है। जन्म-जन्मान्तरो से आते हुए पाप पर रोक लगा दी जाये तो जो व्यर्थ का कचरा (मलिनता) आपकी आत्मा के ऊपर लग रहा है, वह रुक जाये। और जो मलिनता अर्थ के साथ आ रही है, उसको भी रोकने का प्रयास करना चाहिये।

बधुओ ! यह ऐसा व्रत है कि हरएक व्यक्ति इसे अपने जीवन मे धारण करके कम-से-कम व्यर्थ के पापो से तो बच ही सकता है। उसके पाच अतिचार हैं। उनका ध्यान रखे तो अच्छा रहेगा। इसमें कोई कठिनाई नही आती है। इससे व्यर्थ के पाप रुक जाते है। इस व्रत का प्रसग जिसके जीवन मे रहता है, वह व्यक्ति गृहस्थ मे भी कार्य करता हुआ अपनी आत्मिक निर्मलता को बढा सकता है।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ३

# आध्यात्मिक लक्ष्मी

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,

धीग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?

विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्या वाछित काज ।

विमलनाथ प्रभु को स्मृति-पटल पर लेते हुए कवि का अन्त-स्वर आत्मा के स्वरूप का चितन करता रहता है । आध्यात्मिक रस मे रमण करने वाली आत्मा जिस पवित्र सुख का सकल्प अपने समक्ष रखती है, उस सकल्प की अवस्था का चिंतन भी निरतर होता रहता है । परमात्मा के चरणो की ओर कवि का ध्यान गया और उसने अपने ज्ञान के आलोक मे देखा कि इस ससार मे वास्तविक सुख की स्थिति प्रभु के चरणो मे ही है ।

दुनिया के कई अज्ञानी प्राणी ससार के अन्दर सुख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं । वे यही सोचते रहते है कि यदि पाचो इन्द्रियो के विषयो का सयोग मिल जाये तो हम अपने जीवन मे ससार के सुख अच्छी तरह से भोग सकेंगे । ऐसे प्राणियो की तुच्छ बुद्धि इन क्षणिक सुखो से तृप्त होने की स्थिति मे ही रहती है । जब तक व्यक्ति इन तुच्छ सुखो मे आसक्त बना रहता है, तब तक उसकी विचारधारा सामने दिखने वाले विषयो की तरफ ही लगी रहती है और वह इनको ही सब कुछ समझ लेता है । उसकी दृष्टि आतरिक सुखो की ओर बहुत कम जाती है । यदि कोई जबरदस्ती उसकी दृष्टि को उधर खीच ले और एक बार भी उसको वास्तविक आनद का अनुभव करा दे तो फिर वह ससार के विषयो को, इन नाशवान सुखो को तृणवत् समझ

कर आतरिक दिव्य सुख का आनद लेने लगेगा।

जिन प्राणियो का यह ध्यान है कि इस ससार मे इन्द्रिय-जनित सुख प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी की आवश्यकता है और जितनी सपत्ति एकत्रित कर ली जाएगी, उतनी ही सुख की अभिवृद्धि होगी, वे इसी भावना को लेकर लक्ष्मी के पीछे बुरी तरह भागते है परन्तु वे समझ नही पाते है कि लक्ष्मी कहा है और वह किसके चरणो मे रहती है ?

लक्ष्मी का एक नाम चचला भी है। जिसका नाम ही चचला है, वह स्थिर व्यक्ति के साथ तो स्थायी रूप से रह सकती है परन्तु अस्थिर व्यक्ति के साथ टिक नही सकती। स्तम्भ यदि मजबूत है तो झडा कितना ही चचल हो, वह उसके सहारे टिका रह सकता है परन्तु यदि स्तम्भ डोलायमान है तो फिर झडा तो उडने वाला है ही, उसका कोई ठिकाना ही नही रहेगा। लक्ष्मी रूपी झडा, जिसको कमला भी कहा गया है, यदि स्थिर चरणों के साथ है तो उसकी चचलता भी समाप्त हो सकती है और वह स्थायी रूप से उन स्थिर चरणो मे सदा के लिये बनी रह सकती है। यदि उसके चरण ही स्थिर नही है तो फिर वह कमला स्थिर कैसे रह सकती है ? कवि ने रूपक दिया है कि—

चरण कमल कमला बसे रे, निर्मल स्थिर पद देख।
समल अस्थिर पद परिहरे रे, पकज पामर पेख ।।

दुनिया के लोग समझते है कि पकज यानि कमल पर लक्ष्मी का निवास है और वह कमल का सहारा लेकर चलती है। परन्तु ज्ञानी-जनो का कथन है कि कमल के सहारे लक्ष्मी टिक नही सकती, क्यों कि कमल स्वय चचल है। कमल कीचड से पैदा होने वाला है और जो कीचड से पैदा होने वाला है, उसके साथ लक्ष्मी कब टिक सकती है ? लक्ष्मी तो निर्मल वुद्धि को देख कर ही स्थायी रह सकती है। पर-मात्मा के चरणो का सहारा लक्ष्मी ने लिया, कमला ने लिया तो क्या

समझ कर लिया ? इसीलिए कि प्रभु के चरण निर्मल है। उनमे मल नही है और वे स्थिर है, कभी भी विचलित होने वाले नही हैं। ऐसे प्रभु के चरणो मे कमला बसने लगी और उसने पकज को छोड दिया क्योकि वह मलयुक्त था।

चचला कमजोर कमल को छोड कर प्रभु के चरणो मे पहुची, यह एक अलकार है। इस अलकार के माध्यम से आप वास्तविक सुख की सिद्धि को, लक्ष्मी को समझिए। आत्मा को वास्तविक सुख दिलाने वाली वह कमला आध्यात्मिक लक्ष्मी है। उस लक्ष्मी को निर्मल चरण ही पसद हैं। वह प्रभु के चरणो को निर्मल समझ कर ही उनमे स्थिर है।

हाड, मास, रक्त आदि से बने मनुष्य के चरण तो नाशवान है। ये चरण स्थिर रहने वाले नही हैं। परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के चरण तो श्रुत और चारित्र रूप हैं। श्रुत और चारित्र रूप चरण परमात्मा की विराट् शक्ति के अटल स्तम्भ है। जिस व्यक्ति को परमात्मा का स्वरूप पसन्द है, जिसको स्थायी शांति चाहिए और जो सदा के लिए आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना चाहता है, वह प्रभु के श्रुतधर्म और चारित्रधर्म रूप इन दोनो परम पवित्र चरणों को ही ग्रहण करेगा।

श्रुत का तात्पर्य है—आत्मा और परमात्मा का सही चिन्तन। इस ससार मे कौन-से पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं, कौन-से छोड़ने योग्य हैं और कौन से जानने योग्य हैं, इस प्रकार के सही आध्यात्मिक विज्ञान के साथ जो निर्मल ज्ञान है और उस निर्मल ज्ञान के साथ वैसा ही चिन्तन होता है तो वह श्रुत कहा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संसार के पदार्थों का ज्ञान किया, फिर उनमें से त्यागने योग्य पदार्थों का त्याग करके और ग्रहण करने योग्य पदार्थ का ग्रहण करके [illegible] [illegible] आध्यात्मिक [illegible] है [illegible] वह चारित्र कहा जाता है

ये दोनो मूल आध्यात्मिक शक्तियां हैं। इन दोनों शक्तियों के सहारे ही आत्मा चरम सीमा की अवस्था मे परमात्मा बन सकती है। उसकी आराधना के लिए ही यह मनुष्य तन है। इस मनुष्य जन्म मे जिसने प्रभु के चरणो की आराधना को समझ लिया, वह स्थायी रूप से लक्ष्मी को पा लेगा। वह स्थायी सुख दिलाने वाली लक्ष्मी के साथ सदा के लिए सम्बन्धित हो जाएगा। फिर कभी सुख उससे अलग नही होगा। आध्यात्मिक लक्ष्मी उससे दूर नही होगी। वह सदा के लिए प्रतिक्षण अनन्त सुख का आनन्द लेता रहेगा। इसी भावना के साथ जिन आत्माओ का विज्ञान प्रबुद्ध हो गया, वे आत्माए चाहे प्रारम्भ मे सत्सगति का योग न बठने के कारण अन्य तरीको से ससार के नाशवान सुख को पकड कर चलती रही हो, परन्तु जैसे ही भीतर की जागृति हुई कि वे उसी समय ससार के इन नाशवान सुखो को नाक के श्लेष्म की तरह त्याग कर अपने दिव्य सुख की खोज मे लग गई।

हम प्राचीन काल की कथाओ मे पढते है और ऐतिहासिक पृष्ठो को उलटने का प्रसंग आता है तो उनमे ऐसे दिव्य पुरुषों का स्वरूप चमकता हुआ दृष्टिगत होता है कि प्रारभ मे नाशवान गदी वासना मे निमग्न प्राणी कालान्तर मे निमित्त पाकर किस प्रकार प्रबुद्ध हो गये। इस विषय मे अनेक रूपक है। उनमें से महात्मा तुलसीदास जी का रूपक आपके सामने रखता हू।

महात्मा तुलसीदास जी के प्रारभिक जीवन की घटना को आप सुनेगे तो आपको पता लगेगा कि वे किस प्रकार इन पाचो इन्द्रियो के विषयो मे लिप्त थे। जैसे कि अन्य साधारण व्यक्ति संसार के सम्बन्ध को जोड कर चलते है और तरुणाई मे मोह के नशे मे रहते है, वैसे ही थे तुलसीदास जी। कोई विरले ही पुरुष ऐसे होंगे कि जो इस मोह के नशे से ऊपर उठ कर इस मदिरा पर अपनी आत्मा का अकुश लगा पाये।

सुबाहुकुमार का प्रसग शास्त्रीय दृष्टि से आप सुनते ही रहे है। उन्होंने समृद्धिशाली परिवार मे जन्म लिया। अनेक रमणियो के साथ उनका विवाह सम्बन्ध हुआ। वे पाचो इन्द्रियो के विषयो मे लिप्त रहे। परन्तु जैसे ही उनको ज्ञान हुआ कि यह मनुष्य-तन इन नाशवान सुखो के पीछे नष्ट करने के लिए नही है तो तत्क्षण वे जागृत हो गए। वे भरा-पूरा घर और रमणियो को छोड कर आध्यात्मिक लक्ष्मी की साधना मे चल पडे।

कथा की दृष्टि से महात्मा तुलसीदास जी का विषय भी कुछ ऐसे ही प्राणियो जैसा था। तरुणाई मे उनका विवाह हो गया। फिर विवाह के प्रसग से वे इतने दीवाने बने कि एक दिन उनकी अतरात्मा वासना से व्याप्त हो गई। वे सोचने लगे कि मेरी धर्मपत्नी तो पीहर मे है और मैं यहा मे घर हू। कैसे, क्या किया जाए ? उन्हे कुछ नही सूझ रहा था।

आकाश मे घनघोर बादल छाये हुए थे। भयकर अन्धेरी रात थी। साय-साय करके चारो ओर से हवा चल रही थी। बडा भयावना दृश्य था। कोई व्यक्ति बाहर नही निकल सकता था। परन्तु तरुण तुलसीदास जी के मस्तिष्क मे काम की आधी ने इस प्रकार धक्का दिया कि वे घर से चल पडे। उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि किसी प्रकार से भी मैं धर्मपत्नी के पास पहुचू।

वे विकट मार्ग को पार करके अपनी ससुराल पहुचे। गाव में सभी प्राणी रात्रि की सुनसान अवस्था में निद्रा ले रहे थे। सब घरो के दरवाजे बद थे। इस स्थिति मे वे अपनी ससुराल के नजदीक पहुँचे। वहा का दरवाजा भी बद था। आधी रात के समय आवाज लगा कर दरवाजा खुलवाना उचित नही था। वे कुछ देर इधर-उधर देखते रहे।

अचानक उनकी दृष्टि विजली की चमक में दीवार पर पडी। उन्होने देखा कि वहा एक रस्सी लटक रही है और उसको पकड़ कर

ऊपर चढा जा सकता है। उन्होने वह रस्सी पकडी। परन्तु वह रस्सी नही थी, सर्प था। वे उसके सहारे ऊपर चढ गए। उनको यह भी भान नही रहा कि यह जहरीला जतु है और काट सकता है। परन्तु उन्होने कोई परवाह नही की और वे येन-केन प्रकारेण अपनी धर्मपत्नी के पास जा पहुँचे। कथा-भाग मे ऐसा वर्णन है।

पति को अचानक अपने कमरे मे देख कर पत्नी आश्चर्य-चकित हो गई। उसने कहा, "नाथ ! इस भयकर रात्रि मे आप यहां कैसे ?" उन्होने सब बात कही तो स्त्री ने पूछा—"यहा कौन सी रस्सी है ?"

देखा गया तो प्रकट हुआ कि वह रस्सी नही, एक जहरीला जतु था। फिर पति का स्वागत करते हुए पत्नी ने कहा, "आपने मुझे अनुगृहीत किया। इसके लिए मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हू। परन्तु नाथ ! आपको इतना भी भान नही रहा कि यह जहरीला जतु काट लेगा तो प्राणात हो जाएगा। क्या ही अच्छा होता कि आपका जैसा ध्यान मेरी तरफ है, वैसा ही प्रभु के चरणों मे होता। यदि ऐसा कर पाते तो आपका बेडा पार हो जाता।

अस्थि चर्ममय देह मम, तासो ऐसी प्रीति।
वैसी जो श्रीराम मे, होत न कहुँ भवभीति ॥

इस गदी वासना के प्रति आपका जितना ध्यान है, उतना ही यदि प्रभु की ओर हो तो आपको किसी प्रकार भव-बाधा नही रहेगी। तुलसीदास जी ने पत्नी के इतने से वाक्य सुने और उनकी आत्मा में जागृति आ गई।

उसी समय तुलसीदास जी ने कहा, "प्रिये, तुमने बहुत सुन्दर बात कही है। आज से तुम मेरी गुरु हो और मैं तुम्हारा शिष्य हूं। तुमने अच्छा बोध दिया। और वे उसी समय चल पडे।

जब तक आध्यात्मिक ज्ञान का सही भान नही हुआ, तब तक ही उनकी यह दशा रही। आगे चल कर वे महात्मा तुलसीदास जी

के नाम से विख्यात हुए ।

एक अन्य रूपक भी ध्यान देने योग्य है। महर्षि वेदव्यास जी के एक ही पुत्र थे—शुकदेव जी । व्यास जी शुकदेव जी को अत्यन्त प्यार करते थे। एक दिन शुकदेव जी व्यास जी के आश्रम मे जा पहुचे । व्यास जी कहने लगे, "शुकदेव ! तू ससार से उदास क्यो रहता है ? तू विवाह कर ले और पुत्रो को जन्म देकर फिर धार्मिक भावना मे लग जाना। मेरे दादा जी के लिए मेरे पिता जी आधारभूत हुए और मेरे पिताजी के लिए मैं हुआ । अब मेरे लिए तू आधार रूप बन । विवाह के वाद ससार के सुख भोग कर फिर घर से निकल जाना। यदि सतान-परम्परा नही चली तो ससार की व्यवस्था कैसे चलेगी ?

शुकदेव जी ने कहा, "पिताजी ! ससार की व्यवस्था चले या न चले, इसकी मुझे चिन्ता नही है । परन्तु मुझे मनुष्य-तन मिला है तो मैं इस प्रकार से गृहस्थी के चक्कर मे पड कर जीवन को खराब नही करना चाहता। मैं तो स्थायी सुख-सम्पत्ति के लिए, आध्यात्मिक लक्ष्मी की उपलब्धि के लिए वन मे जाऊगा और वहा साधना करूंगा। मैं आपके कहने के अनुसार विवाह करके ससार मे रहने वाला नही हूँ ।"

शुकदेव जी इस प्रकार अपने पिताजी को उत्तर देकर चल पडे। वे वन मे चले तो रास्ते मे नदी आ गई । उसमे कई स्त्रिया स्नान कर रही थी। राजा की रानी और राजकन्याये भी उनमे थी। अनेक महिलायें वस्त्रो को इधर-उधर करके स्नान कर रही थी । तरुण शुकदेव जी उनके बीच मे से होकर निकले । उन बहिनो ने उनका कुछ भी ध्यान नही किया। वे उसी तरह से नहाती रही ।

शुकदेव जी के चले जाने के पश्चात् वेदव्यास जी भी उसी मार्ग से निकले। वे उसी नदी के किनारे पहुँचे, जहा वे स्त्रिया स्नान कर रही थी। जैसे ही उन्होने व्यास जी को देखा तो वे शीघ्रता से अपने शरीर पर वस्त्रो को व्यवस्थित करके एक तरफ बैठ गई ।

यह देख कर व्यास जी के मन मे आश्चर्य पैदा हुआ कि जब

मेरा तरुण पुत्र इधर से निकला तो इन्होंने कोई खयाल नही किया और मैं एक वृद्ध आ रहा हू तो इन्होंने अपने तन ढाक लिए !

व्यासजी की पुत्र सम्बधी चिन्ता कुछ कम पडी और उन्होंने इसका रहस्य समझना चाहा । पूछने पर उन महिलाओ ने कहा, "हम आपको जानती है । आप पडित है, वेद-पारगत है और वृद्ध भी है। परन्तु आपके जीवन मे और आपके पुत्र के जीवन मे बडा अतर है । आपके तरुण पुत्र शुकदेव जी इधर से निकले तो हमको कोई विचार नही आया क्योकि उनका जीवन बच्चे सरीखा है । बच्चा पास से निकले और माता कैसे भी बैठी हो तो वह किसी बात का विचार नही करती है । इसी प्रकार यद्यपि शुकदेव जी तरुणाई में पहुँच गये है परन्तु उनमे कोई विकार भावना नही है । आप वृद्ध है, विद्वान है, परन्तु आपने ससार देखा है, इसलिए हम सावधान हो गईं ।"

आज ससार की वडी विचित्र दशा है । मेरे भाई कभी सोचते होगे कि ये तो पूर्वकाल की कथाये हैं । पहिले ऐसे व्यक्ति होते होगे ।

वर्तमान मे, आज के इस भौतिक युग मे जो कुछ भी साहित्य पढ़ने को मिल रहा है, जिस प्रकार गदे उपन्यास और सिनेमा छात्रो के मस्तिष्क को झकझोर रहे है और जिन स्थितियो से आज का मानव गुजर रहा है, ऐसी स्थिति मे इन भौतिकता की वातो को छोड़ना कठिन प्रतीत हो सकता है । परन्तु कठिन उन व्यक्तियो के लिए है, जिन्होने अपनी आतरिक स्थिति को सभाला नही है ।

आज के इस युग मे भी कई तरुण ऐसे दृष्टिगत होगे कि जिन्होने इस ससार की दशा का अनुभव किया है और विवेक होने के वाद प्रबुद्ध होकर वे अपने जीवन की साधना के मार्ग पर चल पडे है ।

कहने का मतलब यह है कि जिसकी तरुणाई मे आध्यात्मिक मार्ग की ओर भावना वढती है, वही मानव निर्विकारी दशा मे पहुँ-चता है । जो प्रथम वय मे इन विकारो के चक्कर मे नही आता है, वह अपने जीवन को आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुचा सकता है और

यदि इसी वय मे ससार के चक्कर मे फस जाता है तो फिर बिरला ही व्यक्ति इससे बच पाता है।

जब सर्पिणी के बच्चे पैदा होने का समय आता है तो वह अपने शरीर की कुडली लगा कर उस घेरे के बीच मे अण्डे देती है। उसी समय उसे जोर की भूख भी लगती है। तब वह घेरे मे रहे हुए बच्चो को खा जाती है, परन्तु सयोग से जो बच्चा घेरे से अलग हो जाता है, वह बच जाता है। ऐसी ही दशा इस ससार रूपी सर्पिणी की है। इसके गोल चक्कर मे जो फसे हुए हैं, उनमे से कोई बिरला ही बच सकता है, जैसा कि आप देख ही रहे हैं।

जो परिवार मे रह रहे है, वे इन नाशवान सुखो की स्थितियो का अनुभव कर रहे है। परन्तु सोचिए कि उन्हे शाति का कितना अवसर मिल रहा है ? मछेरा मछली मारने के लिए जाता है तो वह थोड़ी सी आटे की गोली भी अपने काटे मे लगा देता है। जब वह उसको पानी मे डालता है तो बेचारी भद्रिक मछली खाने के लोभ में उस काटे के अन्दर फस जाती है। वह उसके दुष्परिणाम को नही देखती है। वह नही सोच पाती है कि मैं जरा सी आटे की गोली खाऊगी तो मेरा मुह इसमे विध जाएगा। वह खाने को जाती है और जैसे ही मुंह को खोलती है तो काटे मे फस जाती है। फिर तो मृत्यु ही है, बचने का कोई उपाय नही। ससार की यही विचित्र दशा चल रही है।

बधुओ ! आपके जीवन का विज्ञान और आपकी कला यदि आध्यात्मिक साधना में लग जाती है तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। मैंने सकेत किया है कि प्राचीन उदाहरणो की तरह वर्तमान मे भी उदाहरण मिलते है, जो सतो व सतियो के रूप में देखे जाते हैं। जो बहिन और भाई आध्यात्मिक साधना के लिये तत्पर होकर इस मार्ग पर आये हैं, वे पहले किस प्रकार से सुकुमार थे, यह उनके पूर्व के जीवन से जाना जा सकता है। आज आप देख ही रहे हैं कि वे सिहवत् निर्भीक होकर अपनी आत्मसाधना में लगे हुए हैं।

साधारण मनुष्यो मे यह भावना कम है, क्योकि उनका ध्यान ससार के विषयों में रहता है। परन्तु जो त्यागी है, वे त्याग की दृष्टि से त्यागी का मूल्याकन करते है। जिसको वास्तविक सुख की अभिलाषा है, वह अपने अमूल्य समय को नष्ट न करके आध्यात्मिक साधना मे लगेगा। जो त्याग करता है, वह पूर्ण रूप से साधक बन कर चलता है और कदाचित् कोई पूर्ण त्याग के मार्ग को नही अपनाता है तो भी आशिक रूप से त्याग के मार्ग पर चल कर अपने नीतिमय जीवन से भी ससार मे अपूर्व आदर्श उपस्थित करता है।

मैं इस विषय मे अभी विशेष न कह कर यही कहता हूं कि आज आध्यात्मिक लक्ष्मी की आवश्यकता है, ससार की लक्ष्मी की आवश्यकता नही। उसे तो अज्ञानवश लक्ष्मी माना है।

इस श्रद्धा के साथ जिनका जीवन होगा, वे ही सच्ची सुख-संपदा प्राप्त करेंगे। पहिले आपत्तिया आती हैं, जो जीवन को झकझोर डालती है, परन्तु जो दृढता के साथ आध्यात्मिकता के मार्ग पर चल पड़ता है, वह एक दिन स्थायी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।



बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ४

# गुण-मकरन्द

दुःख दोहग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्या वाछित काज ।

विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना कुछ समय से आपके समक्ष आ रही है। प्रार्थना का समग्र रूप तो नही रख रहा हूँ परन्तु जिन पक्तियो का मुख्य तौर पर अर्थ करना है, उनका उच्चारण ही कर लिया करता हूँ । एक दृष्टि से देखा जाये तो प्रार्थना एक निमित्त मात्र है । वस्तुत प्रार्थना वह है, जो जीवन से सम्बधित है । वाह्य कडियो का उच्चारण कठ-ताल्वादि के व्यापार का प्रयत्न है परन्तु इनके माध्यम से अपनी आत्मा के विमल स्वरूप को हम पहिचान सकें तो मनुष्य जीवन की सार्थकता हाथ मे आ जाए ।

आज विमलता की नितान्त आवश्यकता है। विमलता के अभाव मे ही विषमता की ज्वालायें सुलग रही हैं । यदि मनुष्य का मन विमल बन जाता है, इसमे पवित्र सस्कारो का सचार हो जाता है तो तमाम कुटिलतायें और मलिनतायें समाप्त हो जाती है ।

परन्तु मुख्य प्रश्न यहा अटका हुआ है। शरीर का आकार बडा है। हम शरीर को चलते हुए, खाते हुए, बैठते हुए, सुनते हुए देखते हैं। शरीर सम्बन्धी तमाम क्रियायें हर किसी की दृष्टि मे आ सकती हैं परन्तु मन की क्रियायें सीधे रूप मे मनुष्य के समक्ष नही आती हैं । उनका अनुमान नही किया जा सकता है। परन्तु यह अनुमान सहज है कि आत्मा इतने वडे शरीर का सचालन जिस माध्यम से कर रही है, वह

माध्यम ही इसका मुख्य यत्र है।

द्रव्य मन से प्रभावित होता है और जब वह इन्द्रियो के साथ सयुक्त होकर व्यापार मे लगता है तो सारे शरीर की क्रियाये विचित्र रूप मे दीख पडती है। मनुष्य का व्यवहार, जैसा भी परिलक्षित हो रहा है, इसी से आप मन को पहिचान सकते हैं। मन यदि विमलता के साथ चल रहा है तो शरीर की क्रियाये भी विमल कार्य की ओर हो जायेंगी और वह मलिन कार्य नही करेगा। यदि मन मे मलिनता है तो नेत्रो मे भी मलिनता आए बिना नही रहेगी। मन मे यदि कुटिलता है तो मनुष्य के व्यवहार मे भी कुटिलता रहेगी। मन मे यदि छल है तो मानव के व्यवहार मे भी छल प्रदर्शित होगा। मन गदा है तो गदी प्रवृत्ति अवश्य होगी।

आप मन को इन नेत्रो से तो नही देख सकते परन्तु मन की क्रियाओ के माध्यम से उसकी प्रवृत्ति को जान सकते हैं। मन की वृत्ति से ही मनुष्य कर्मों का बध करता है और उससे ही वह कर्मो को तोडता भी है। कहा है कि—

मन एव मनुष्याणाम् कारण बधमोक्षयो:।

मन की प्रवृत्ति ही बध और मोक्ष का कारण बनती है। यदि कर्मों से मुक्ति पाना है तो मन को पवित्र करना जरूरी है। मन के माध्यम से आत्मा शुभ तथा अशुभ कर्म करती है और इसी से शारीरिक क्रियाये शुभ और अशुभ प्रवृत्तियो मे लगती है। इस प्रकार देखा जाए तो सब पापो की जड मन मे है और सब पवित्र सस्कारो की भूमि भी मन ही है।

मन के सस्कार विचारो से बनते है। यदि विचारो की शुद्धि मे प्रभु की विमलता का आदर्श रूप आ जाए, एक बार भी मन उन विमलनाथ भगवान के चरणो का आस्वादन सही तरीके से कर ले तो फिर ससार की लालसाये उसमे से निकलती हुई दृष्टिगत होगी, वे टिक नही सकेंगी। वे लालसायें तभी तक है, जब तक कि

मनुष्य उन प्रभु के चरणो का मकरद नही ले रहा है। इसीलिए सकेत आया है कि–

'मुज मन तुज पद–पकजे रे, लीनो गुण-मकरन्द'

तुम्हारे चरणो को मैं पकज की उपमा दे दू। पकज का तात्पर्य कमल है। कमल मे मकरद (पराग) होता है। इस मकरद को लेने के लिए भवरे कमल के इर्दगिर्द घूमते हैं। कमल तो सचित जीवयुक्त है और उसका मकरद लेने वाला भवरा भी अल्प-विकसित चतुरिन्द्रिय आत्मा है। परन्तु वह इस मकरद के पीछे अपनी समग्र आत्मा को भूल जाता है। जब कभी वह कमल के मकरद की सुगध में, कमल की खुशबू मे, दत्त-चित्त हो जाता है तो वह सारे ससार को भूल जाता है। फिर उसके सामने चाहे स्वर्ग की दिव्य सुवास भी क्यो न हो परन्तु वह उसको भी बिल्कुल तुच्छ गिनता है क्योकि उसको कमल के मकरद की सुगध अत्यन्त प्रिय है। उसमे लीन होकर भवरा ससार को तो भूलना ही है परन्तु अपने आपकी शक्ति को भी वह विस्मृत कर देता है। वह कमल की सुगध लेने के लिए उसमे बैठ जाता है। परन्तु सूर्यास्त होने पर सूर्य-विकासी कमल मुकुलित हो जाता है, बद हो जाता है तो कमल के बद होने के साथ ही साथ भवरा भी उसमे बद हो जाता है।

भवरे का मुख सख्त होता है। उसमे ऐसी ताकत है कि वह चाहे तो लकडी को भी छेद सकता है। फिर कोमल कमल की पखुडियो को छेद कर बाहर निकलने मे उसे कौन-सी कठिनाई है? परन्तु वह अपनी कठोर शक्ति कोमल कमल की पखुडियो को कुतरने मे नही लगाता है, यद्यपि कमल मे उसके जीवन को खतरा है। यदि वह उसमे रह गया तो सम्भव है कि वह मारा जाए। परन्तु वह अपने आपको भूल जाता है और सोचता है कि मैं मर भले ही जाऊ फिर भी मुझे तो यह मकरद चाहिये।

किसी कवि ने कहा, "भवरे! तू अपने जीवन की आहुति इस

कमल मे क्यो दे रहा है ? अपनी शक्ति से इसे काट कर बाहर निकल जा ।" परन्तु जवाब मे भवरा कहता है, "नही, मै इसे नही काटूगा ।" कवि का कथन है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजश्रीः ।
इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार ॥

कमल अभी मुकुलित हो गया है परन्तु प्रात काल होते ही सूर्य उदित होगा और कमल की पखुडिया खिलेगी । रात्रि बीत जाएगी, सुप्रभात होगा और कमल हंसेगा–खिल जाएगा । ऐसा चिंतन भवरा कर ही रहा था कि कवि के अनुसार वह कमल हाथी की सूड का शिकार बन गया । एक मदोन्मत्त हाथी उस सरोवर मे पानी पीने को आता है और उस कमलिनी को उखाड कर फेंक देता है । कमलिनी के टूटने के साथ ही भवरा भी नष्ट हो जाता है ।

भाई ! वह भवरा तो चतुरिन्द्रिय प्राणी है । उसमे चार इद्रियों का ही विकास है । उसमे द्रव्य-मन की अवस्था नही है । वह भाव-मन के अध्यवसाय से काम करता है । वर्तमान सुख की ही उसकी सज्ञा हे । वह इस कमल के मकरद के पीछे अपनी जिंदगी की परवाह नहीं करता है, सारो दुनिया को कुछ नही समझता है । उस भवरे जैसी दशा—उपमा की दृष्टि से सम्यक् ज्ञानी अपने मन–भवरे की वतलाते हैं । वे कहते है कि यह मन-भवरा परमात्मा के चरण-कमल मे सदा ही लीन रहे ।

जैसे मानव शरीर के दो पैर है, वैसे ही परमात्मा के भी आध्यात्मिक दृष्टि से दो पैर है—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म । श्रीमद् ठाणांग-सूत्र (२।१।१६) में दो प्रकार के धर्म वतलाए है । प्रभु महावीर ने चतुर्विध संघ को कहा है—

दुविहे धम्मे पन्नत्ते । त जहा सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव ।

श्रुतधर्म और चारित्रधर्म ये दोनो आत्मा के विमल गुण है। यह निर्मल अवस्था है। इससे आत्मा का विमल स्वरूप विकसित होता है। जब ये दोनो गुण परिपूर्ण अवस्था मे पहुच जाते हैं—चरम सीमा को छू लेते है तो वहा विमलनाथ भगवान का रूप बन जाता है।

कवि ने इन दो गुणो को चरणो की उपमा दी है। कवि कह रहा है कि—

मुज मन तुज पद-पकजे रे, लीनो गुण-मकरद।

मेरा मन तुम्हारे श्रुत और चारित्ररूपी चरण-कमलो मे लीन है। जब आत्मा इस मकरद का थोडा-सा भी आस्वादन कर लेती है तो वह इस ससार की नाशवान सम्पत्ति को तुच्छ समझने लगती है। व्यक्ति सोचता है कि इन आध्यात्मिक गुणो के मकरद मे, श्रुत और चारित्र रूप वास्तविक गुणो मे, जब मेरी आत्मा दो क्षण के लिये भी लीन हो जाती है और वास्तविक रूप मे मन, वचन और काया की एकरूपता आती है, उस समय जिस आनन्द का अनुभव होता है, उसके समान ससार का कोई भी पाच-इन्द्रिय-जनित आनन्द नही है।

ससार की जो ये विभिन्न स्थितिया दीख रही है, उनको व्यक्ति तब तक ही महत्त्व देता है, जब तक कि उनसे बढ कर दिव्य अनुभव उसे नही होता है। जब उसे आतरिक शक्ति का दिव्य अनुभव होने लगता है तो फिर चाहे हजारो प्रयत्न किये जायें, ये सब वस्तुयें उसको फीकी ही मालूम होती है। यदि सोने की लका ही हो, चक्रवर्ती का साम्राज्य हो, छ खण्डो का आधिपत्य मिल जाये तो भी वह उसको तुच्छ मालूम पडने लगता है। इतना ही नही, मेरु पर्वत जो शास्त्रीय दृष्टि से स्वर्णप्रधान है और अनेक बहुमूल्य धातुओ से युक्त है, वह भी उसकी निगाह मे तुच्छ हो जाता है। वह सोचता है कि यह तो मिट्टी का ढेर है। इससे क्या मिलने वाला है ? इसमे कोई सार नही है। यदि मै इसमे आसक्त रहा तो आध्यात्मिक जीवन का हनन होगा। मेरी आत्मा मलिन बनेगी और मैं विमल नही

वन सकूंगा।

इन्द्र स्वर्ग की समृद्धि का उपभोग करता है । उसके लिये साधारण व्यक्ति लालायित रहते हैं। इसी तरह से नगेन्द्र, चन्द्र, इन्द्र ये सब स्वर्गीय सुख के प्रतीक है । परन्तु आध्यात्मिक जीवन का आस्वादन करने वाला इन सबको रक के समान समझता है । वह सोचता है कि ये बेचारे बहुत गरीब है ।

जब तक इस आध्यात्मिक-जीवन के विषय मे विस्तृत गति नही है, तब तक ही सासारिक वस्तुओ को महत्त्व दिया जा रहा है। परन्तु जैसे ही मनुष्य सही वस्तुस्थिति के साथ अन्दर के दिव्य आनद का कुछ भी अनुभव करता है, प्रकाश की झलक देख लेता है तो ये सब चीजे उसे मिट्टी के समान मालूम होती है। जिसके पास आध्यात्मिक शक्ति नही, दिव्य आनद नही, जिसने अपनी शक्ति का प्रादुर्भाव नही किया, उस व्यक्ति को यदि सोने का पर्वत भी दे दिया जाये तो भी उससे क्या लाभ होने वाला है ?

भौतिक लालसा तो आकाश के समान अनन्त है । आकाश का अत नही है, वैसे ही इन भौतिक इच्छाओ का भी अन्त नही है। उसके लिये एक नही, अनन्त स्वर्ण-पर्वत भी सतोष के कारण नही बन सकते । और वही व्यक्ति जब विमलनाथ भगवान के चरणो का मकरद ले लेता है, उन चरणो को ही सब कुछ समझने लग जाता है तो फिर इसका असर देखिए ।

मेरे भाई कभी-कभी नवकारसी का त्याग करते है तो उसके फल को देखने की भी कोशिश करते है । वे कहते है, "महाराज ! इसका कितना फल मिलेगा ?" वे सामायिक करते है, पौषध करते है, तपस्या मे जोर लगाते है, धर्म-साधना मे लगते है, परन्तु इन सब साधनाओ मे लगते हुए भी यदि मन मे लालसा है कि इनसे कितना क्या फल मिलेगा, इनसे हमारे कितने कर्म टूटेगे और स्वर्ग का सुख कितना नजदीक आएगा तो कहना होगा कि उन्होने आध्यात्मिक-

जीवन का गुण-मकरंद नही लिया। जिसने आध्यात्मिक जीवन के गुणो का जरा-सा भी आस्वादन कर लिया, उसके मन मे स्वर्ग के दिव्य सुख की लालसा नही रहेगी, न इस लोक अथवा परलोक की ही लालसा रहेगी और न कीर्ति की लालसा रहेगी। वह तो देखेगा कि ये सारे कचरे है। इनके पीछे पडना अपने आपको दरिद्री बनाना है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक सम्पत्ति से जिसका जीवन शून्य है और जिसमे आध्यात्मिक गुणो की सुगध और वस्तुतः आनद की लहर नही है तो उस जीवन का विशेष मूल्याकन नही है।

इस दृष्टि से आप सोचे और फिर नवकारसी करे, पोरसी करें, तपस्या करे। परतु इनके साथ ही श्रुतधर्म और चारित्रधर्म पर श्रद्धा रखे और अपने मन को निर्मल बना कर प्रभु के चरण-कमल के गुण-मकरद को लेने की कोशिश करे। आप ज्ञान सीखे। आप आध्यात्मिक विज्ञान की ओर बढें।

आपको इस विषय की पूर्ति करने के लिये कभी-कभी कहा जाता है तो शायद आप सोचते होगे कि महाराज कह रहे है, अत हमको ऐसा करना चाहिये। यह तो एक तरह का आपके सिर पर भार हुआ। सम्भवत महाराज को खुश करने के लिये आप ऐसा कर रहे हैं। आपने स्वय इसका महत्त्व नही समझा है। महाराज तो अपनी आत्मीय भावना के साथ यही सोचते है कि गुरुदेव के चरणो मे पहुच कर जो कुछ प्राप्त किया है, उसकी जानकारी जगत् के प्राणियो को अपना बधु समझ कर दे दी जाये क्योकि जो इस प्रकार जानकारी दे देता है, वह अपने कर्तव्य से बरी हो जाता है। अब वे भाई अपना कर्तव्य समझ कर उसे ग्रहण करें तो वह उनके लिये होगा, महाराज के लिये नही होगा। यदि महाराज यह समझते हो कि मैंने इनको त्याग करा दिया, इनको सामायिक-पौषध करा दिया, इस प्रकार इन पर अहसान किया तो यह भी गलत है। समझना यह है कि महाराज ने जो शुभ भावना से कहा है, उसे हम अपने जीवन मे ग्रहण

करेंगे तो हमारे श्रुत-चारित्र-धर्म की वृद्धि होगी ।

मगध सम्राट श्रेणिक प्रभु के चरणों मे पहुँचा । उसको ज्ञात हुआ कि पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद ली जावे तो उस का नरक का बधन समाप्त हो सकता है ।

इतनी बात सुन कर श्रेणिक पूणिया श्रावक के घर पर पहुँचा और अपने आने का कारण बताते हुए कहा कि मैं आपसे एक सामायिक खरीदना चाहता हूँ । इस पर पूणिया श्रावक ने सरलता से कहा कि एक सामायिक देने से अगर आपका नरक-बधन समाप्त होता है तो मै देने को तैयार हू लेकिन सामायिक की कीमत क्या है, यह मै नही जानता ।

ऐतिहासिक मगध-सम्राट प्रभु महावीर के चरणों मे फिर पहुँचा और उसने निवेदन किया, "भगवन् ! पूणिया श्रावक एक सामायिक देने को तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हू । कीमत आप बतला दीजिए ।"

प्रभु ने कहा, "राजन्, तुम्हारे पास कितनी सम्पत्ति है ?" उत्तर मिला, "भगवन्, मेरी सम्पत्ति आपसे क्या छिपी हुई है ? आपसे कुछ भी छिपा हुआ नही है । यदि मेरे मु ह से ही कहलवाना चाहते है तो मैं प्रकट कर देता हूं कि मेरे भडार मे कितना धन है । मैं अपनी बहुमूल्य रत्नराशि और स्वर्ण आदि को बाहर निकाल कर मैदान में एकत्रित करूं तो बावन डू गरिया लग जाये । इतना धन है मेरे पास । कितनी कीमत इस सामायिक की चुकाऊँ ?

इस पर भगवान ने प्रकट किया कि इतनी धनराशि तो एक सामायिक की दलाली मे चाहिये ।

इससे आप एक सामायिक की कीमत का क्या चिंतन कर सकते है ? आध्यात्मिक साधना, अडतालीस मिनट की साधना, यदि विधि के साथ पूणिया श्रावक की तरह से बन जाती है तो आपके मन मे गुणो का आस्वादन आए बिना नही रहेगा । फिर तो स्वर्ण

रत्नो की वावन डूगरिया ही क्या, सारे ससार का वैभव भी आपको तुच्छ लगने लगेगा ।

विधि के अनुसार आध्यात्मिक सावना करने की तैयारी करके आप अडतालीस मिनट के लिये भी साधना मे लगेंगे तो हो सकता है कि शुरु-शुरु मे आपको कठिनाई मालूम हो परन्तु जैसे मनोयोगपूर्वक प्रारभ मे पहली कक्षा मे बैठने वाला विद्यार्थी समय पाकर उच्च योग्यता प्राप्त कर लेता है, वैसे ही आप भी आध्यात्मिक योग्यता के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है ।

गजसुकुमाल जी भव्य आत्माओ मे से थे । उन्होंने आध्यात्मिक गुणो के रस का आस्वादन कर लिया था । वे त्रिखडाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव के लघु भ्राता थे । उन्होने इन नाशवान पदार्थों को तुच्छ समझ लिया और आध्यात्मिक रस मे तल्लीन हो गए । उनको वैराग्य-पथ से मोडने के लिये अनेक प्रलोभन दिये गए । उनके चरणो मे सारा वैभव श्रीकृष्ण महाराज ने रख दिया । उन्हे सिहासन पर राज्या-भिषेक करके वैठा दिया और स्वयं श्रीकृष्ण नीचे खडे होकर कहने लगे, "महाराज, अव आप राजानाि -राजा वन गए है। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है ?"

यदि गजसुकुमाल मुनि ने आध्यात्मिक गुणो के मकरद का आस्वादन नही किया होता तो भले ही वे सतो की सगति और प्रभु के चरणो मे गए हो परन्तु इन प्रलोभनो और राज्य-सिहासन के चक्कर मे वे आ जाते । वे कह देते कि मैं राजाधिराज वन कर राज्य करूँगा । परन्तु उनके हृदय मे वह रग प्रवेश कर गया था । वे जरा भी विचलित नही हुए । आध्यात्मिक गुणो के मकरद का आस्वादन एक वार भी जिस किसी ने कर लिया है, उसका जीवन वदल ही जायेगा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जव व्यक्ति भौतिक विज्ञान को ओर से आध्यात्मिक विज्ञान मे मुड जाता है तो उसका जीवन कुछ

अलौकिक ढग से चलने लगता है। मैं उस आध्यात्मिक गुण-मकरद की बात क्या कहूँ और सामायिक की कीमत क्या कहूँ ? इनकी कीमत तो सारे ससार की सम्पत्ति से भी नही कर सकते ।

□□□

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला ५

# आत्मा का विश्राम-स्थल

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धीग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्या वाछित काज ।

विमल स्वरूप को पाने के लिए भव्यात्मा इस विराट् विश्व में परिभ्रमण कर रही है परन्तु विमलता के दर्शन इस आत्मा को सहज ही नही होते । विमलनाथ भगवान ने जिस विमल स्वरूप को पा लिया है, उस स्वरूप को पाने के लिए हर भव्य आत्मा को तडफन (अभिलाषा) रहती है। वह हर समय चिंतन करती है कि मैं विमल स्वरूप को कैसे पाऊ ? मल-रहित अवस्था मेरी जन्मसिद्ध थाती है, परतु उसको मैं विस्मरण-सी कर गई हू । वह मेरी निधि कहा छिपी हुई है और मैं उसे कैसे पाऊँ ? जब इस प्रकार की लगन व्यक्ति के मन मे पैदा होती है और उसके अनुरूप प्रयत्न भी चालू होता है तो आहिस्ता-आहिस्ता वह उस प्रभु के आदर्श के सहारे अपने लक्ष्य को पा सकता है ।

कविता के माध्यम मे शक्ति-सम्पन्न भगवान को स्वामी के रूप मे माना गया है, जिसका तात्पर्य गुणो की सर्वोत्कृष्ट सीमा को जीवन मे ग्रहण करना है । वह अवस्था इस आत्मा के लिये चरम विश्राम के स्थान की है। इसके पूर्व ससार का परिभ्रमण करने वाली आत्मा के लिये प्रारम्भिक विश्राम का स्थल आता है तो उसको बडी तुष्टि मिलती है । जब जीवन मे सम्यक् दृष्टि प्रकट होती है, जब हित और अहित का विवेकरूपी दीपक जगता है, जब आत्मा का स्वरूप

समझ कर समग्र शक्तियो को प्राप्त करने की श्रद्धा बनती है, त्यागने योग्य तत्त्वो का मैं कब परित्याग करूँ—इस प्रकार का श्रद्धान जब मन मे अन्त करणपूर्वक जमता है तो आत्मा के लिये वह विश्राम-स्थान है ।

अनादिकाल से मिथ्यात्व के बीहड जगल मे काम, क्रोध रूपी भयावने जगली जतुओ के बीच मे इस आत्मा ने सत्रास ही पाया है। इस मिथ्यात्व रूपी अरण्य मे इधर से उधर भटकते हुए जब तक सही राजमार्ग नही मिलता है, तब तक आत्मा को अत्यधिक थकान का अनुभव होता है और जैसे ही राजमार्ग सामने आ जाता है तो कितनी भी थकान हो, उसको विश्राति मिलने का प्रसग बन ही जाता है ।

जिन व्यक्तियो का पैदल-भ्रमण होता है (महात्माओ ने तो अपनी साधना की दृष्टि से जिदगी भर के लिये पैदलभ्रमण का ही प्रण ले रखा है), वे वीरान जगल मे रास्ता भूल जाये और उस जगल मे मार्ग बताने वाला कोई व्यक्ति भी नही मिले तो भले ही वे थोडे-से ही रास्ते को तय करे परन्तु उनके पैरो मे थकान अत्यधिक बढ जाती है । वे सोचने लग जाते है कि हम बहुत चल चुके, अब तो कोई रास्ता मिले । उस समय पैरो के उठने का प्रसग भी कम आता है । परन्तु यदि सहसा उनकी दृष्टि मे गाव का मार्ग आ जाता है तो उस रास्ते को देखते ही उनकी सारी थकावट दूर हो जाती है ।

इस संसार की मोह-माया मे परिभ्रमण करते हुए इस आत्मा की यही दशा बन रही है । बार-बार जन्म ग्रहण करके मृत्यु को प्राप्त करती हुई इस आत्मा को हैरानी के अतिरिक्त कुछ भी पल्ले नही पड़ता है । यह कितनी विकट और असह्य यातनाओ को सहन करती है ! यह कितने दु.खो का सामना करके चलती है ! इस अवस्था मे जब आत्मा थकावट का अनुभव करने लगती तो उसे विश्राम-स्थान मिल सकता है । परन्तु जिन आत्माओ के मस्तिष्क पर पर्दा

पडा हुआ है, उनको वह नही मिल पाता।

इस जीवन मे प्रथम विश्राम-स्थान सम्यक्-दृष्टि है। अनादि-काल के मिथ्यात्व का क्षपण होता है। इस मिथ्यात्व की दशा की कोटि-कोटि सागरोपम स्थिति जब अवशेष रहती है तो उस समय इस आत्मा को 'धर्म' शब्द प्रिय लगता है। वह सोचने लगती है कि 'धर्म' कोई अत्यन्त प्रिय तत्त्व है। इसका मूल्याकन आवश्यक है। इससे विश्राम का कुछ असर मालूम होता है। विश्राम नही मिलता है परतु आत्मा के परिणामो की धारा अत्यधिक उज्ज्वल होती हुई चलती रहती है तो आखिर मे यथाप्रवृत्तिकरण के साथ अपूर्वकरण की अवस्था बनती है। अपूर्वकरण आत्मा के ऐसे परिणामो का एक स्वरूप है, जिसके अन्दर इन गाढतम कर्मो का भेदन होता है। अनादिकाल की एक ग्रथि, कर्मो की एक मजबूत गाठ, इस आत्मा के साथ लगी हुई है। इसके खुले बिना, इस ग्रन्थि के भेदन किये बिना यह आत्मा अपने राजमार्ग को प्राप्त नही कर सकती। यह ग्रन्थि-भेदन परिणामो के अत्यधिक उज्ज्वलता के समुल्लास मे होता है। वह समुल्लास कभी भी स्वाभाविक बन सकता है। कभी दूसरे के उपदेश से आत्मा की यह पवित्र अवस्था आती है, जिससे कि वह इस ग्रन्थि का भेदन कर के अपूर्व आनन्द का अनुभव करती हुई शास्त्रीय परिभाषा से यथा-प्रवृत्तिकरण के साथ अपूर्वकरण की अवस्था प्राप्त करके सम्यक्त्व का लाभ, उपशम समकित की प्राप्ति करती है। उस समय जो कुछ शात-प्रशात अवस्था अनुभव होती है, वह आत्मा के लिये परम शाति का विश्राम-स्थल है।

कदाचित् किसी आत्मा को स्वाभाविक तौर पर ऐसा प्रसग नही आए तो सत-सम्पर्क से भीतर से पट खुलते है, सत-वाणी के आघात से अन्दर की ग्रथि टूटती है। उस वक्त भी अनादिकालीन मिथ्यात्व नष्ट होकर उस अपूर्वकरण की अवस्था से ही वह क्षयोपशम समकित भी पा सकती है। फिर आगे समकित का स्वरूप समझ कर

सम्भवतः वह इस स्थान पर आरूढ हो जाती है तो यह भी विश्राति का स्थान है ।

कैसे भी हो परन्तु आत्मा को विश्राम अवश्य चाहिये । शारीरिक श्रम करते हुए मनुष्य जब थक जाता है तो कुदरती तौर पर संध्या के समय वह विश्राम करने के लिए सो जाता है। इसके विना उसको चैन नही पडता है। जब कभी उग्र रोग का आक्रमण होता है तो चिकित्सक कहते है, "भाई, अब विश्राम करो।" परन्तु यह विश्राम सिर्फ शरीर सम्बधी है ।

आध्यात्मिक जीवन में जब अत्यधिक कर्मो के रोग की अभिवृद्धि होती है, उस वक्त आध्यात्मिक–चिकित्सक अर्थात् ज्ञानीजन इस कर्म–रोग से युक्त आत्माओं को सबोधन करते है कि आप विश्राम कीजिये । परन्तु यह विश्राम शरीर को निश्चेष्ट करने का नही, यह विश्राम तो सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के श्रद्धान का होता है । वास्तविक ज्ञान, सच्चा श्रद्धान और सच्चे धर्म का स्वरूप, पाच और पाच दस सरीखी अवस्था जिस वक्त आत्मा के अन्त.करण मे प्रवेश करती है, उस वक्त वह कितनी शाति का अनुभव करती है, यह तो ऐसा करने वाली आत्मा ही अनुभव कर सकती है ।

मगध सम्राट श्रेणिक रात और दिन सासारिक विषयों में उलझा हुआ रहता था । उसको विश्राम-स्थान का प्रथम सोपान भी नही मिला था। वह नास्तिक प्रवृत्ति के साथ अपने जीवन का सम्बध लेकर चल रहा था । परन्तु सहसा उसने अपने ही बगीचे मे एक दिव्य-स्वरूप महात्मा को देखा। उनके प्रथम दर्शन से ही उस ऐतिहासिक सम्राट के मन मे जो विश्राम के क्षण उपलब्ध हुए, उसका अनुभव उसने किया।

मुनिराज के मौन था । उनकी ध्यानस्थ–मुद्रा का सम्राट ने प्रथम अवलोकन किया तो सहसा उसके मुंह से निकल पडा–

अहो वण्णो अहो रूव, अहो अज्जस्स सोमया ।

अहो ग्वत्ति अहो मुत्ती, अहो भोगे असगया ॥
(उत्तराध्ययन २०/६)

अहो, क्या ही पूर्ण तरुणाई की अवस्था मे रूप-सम्पन्न, वर्ण-सम्पन्न ये महात्मा ध्यान-मुद्रा मे स्थित है ! इस तरुणाई की अवस्था मे कितनी सौम्यता है ! पाचो इन्द्रियो के भोगो मे अनासक्ति से इनका जीवन कितना निस्पृही बना हुआ है ! ऐसा तरुण तो मैंने कभी नही देखा । तरुण होते हुए भी ये शरीर से निर्ममत्वी और शात भाव से ध्यान मे स्थित होकर मेरे मन को आह्लादित कर रहे है ।

मगध-सम्राट का मस्तिष्क अपने वैभव की गर्मी से थका हुआ था । उसके मस्तिष्क मे अपने रूप का भी बडा गर्व था । वह अपने रूप के पीछे दूसरो को कुछ भी नही समझता था । उसकी कल्पना थी कि मेरे मुकाबले का रूपवान, वैभववान और वर्णवान अन्य कोई व्यक्ति नही है । मैं ही सब कुछ हू । मैं क्यो आत्मा–परमात्मा मे विश्वास करूँ ? दुनिया मुझको नमती है तो मैं किसको नमन करूँ ?

प्रथम विश्राम-स्थल पर प्रवेश करने के पश्चात् जब मगध–सम्राट प्रभु के समवसरण मे पहुचा तो उसके (मगध सम्राट के) रूप को देख कर कई त्यागी–पुरुष और महिला–वर्ग आश्चर्यचकित से रह गये । वस्तुत उसका रूप-लावण्य वैसा ही था । परन्तु सम्राट ने जब उस तरुण तपस्वी को देखा तो उसकी सारी थकान समाप्त हो गई । व्यक्ति किसी भी विषय मे आश्चर्य तभी करता है, जबकि वह दूसरे व्यक्ति को अपने से अधिक पाता है । मगध-सम्राट तो अपने शरीर पर गर्व कर रहा था परन्तु फिर भी उसको आश्चर्य हुआ कि उससे बढ कर मुनि का रूप है, मुनि की आकृति है । इस पर भी सोने मे सुगन्ध के तुल्य विशेष बात यह थी कि वे शात–दात थे, वे समस्त विषयो का त्याग करके परम साधना के योगो मे परम शाति के स्थान पर विराजमान थे ।

ऐसे महात्मा के निमित्त से मगध-सम्राट प्रथम विश्राम–स्थान

मे प्रवेश करते है और इसके पश्चात् वे अपने जीवन में आगे बढते है। इस प्रकार का विश्राम-स्थान यदि ससार के व्यक्तियो को मिल जाए तो वे भी अपने प्रारभिक जीवन मे शाति के क्षणो का अनुभव कर सकेंगे।

एक व्यक्ति जन्माध है। जन्म से ही उसकी आखो में रोशनी नही है। परिवार में अन्य कोई सदस्य उसको सभालने वाला भी नहीं है। इधर वह वृद्धावस्था से भी जर्जरित हो गया है। वह व्यक्ति लाठी के सहारे अपनी शौचादिक क्रिया की निवृत्ति के लिए शहर से बाहर जाना चाहे तो वह दीवार के सहारे-सहारे चलता है। परन्तु इधर तो शारीरिक ताकीदी और उधर आखो मे रोशनी नही। ऐसी स्थिति मे द्वार नही मिले तो उस व्यक्ति को कितनी हैरानी और थकान अनुभव होती होगी, यह तो वही जान सकता है। यदि सहसा उसके नेत्र खुल जाये तो उस व्यक्ति को कितना आनद आएगा, उसको कितना विश्राम मिलेगा, कितनी शाति मिलेगी, यह भी वही जान सकता है।

वैसे ही मिथ्यात्व के रोग के कारण यह आत्मा जन्मान्ध व्यक्ति की तरह बनी हुई है और इस ससार की दीवार के सहारे जर्जरित होकर चल रही है। इसको सहारा देने वाला वस्तुत: देखे तो कोई नही है। यह अपने आपको स्थिति मे भटक रही है। यदि सहसा इसके समकित नेत्र खुल जाये तो इसे चरम आनन्द का अनुभव हुए बिना नही रहेगा। इसीलिए प्रथम विश्राम-स्थान को शात-प्रशात की उपमा दी गई है।

दूसरा विश्रामस्थान वह होता है, जबकि व्रत ग्रहण किया जाता है। व्यर्थ के पापो का परित्याग करके व्यक्ति जब यथासभव बारह व्रत अथवा एक, दो, तीन या चार व्रतों को ग्रहण करता है तो वहा भी शास्त्रकारो की दृष्टि से विश्राम का स्थान है क्योकि इस प्रकार पापो से छुटकारा मिल सकता है।

किसी व्यक्ति के ऊपर कर्ज है और वह व्याज से दबा जा रहा है। यदि सहसा उसको कर्ज से मुक्ति मिल जाये तो उसको कितने आनन्द का अनुभव होगा ? वह भी विश्राम पाता है। वैसे ही व्यथ के पापो के कर्ज से आत्मा दवती चली जा रही है और उसकी अव्रत की क्रियाये व्याज के रूप मे अनादिकाल से लगी हुई आ हैं. जिससे कि वह पनप नही पा रही है। जब सतो की सगति मे आकर और आत्म-स्वरूप को समझ कर वह पापो का त्याग करती है तो निश्चय ही वह अपने सिर के भार को हल्का करके विश्राम का अनुभव करती है।

गृहस्थ मे रहने वाले व्यक्ति के लिए अडतालीस मिनट की सामायिक भी विश्राम है। साथ ही साथ पौषधव्रत भी ग्रहण किया जाये—कम से कम महीने मे छ पौपधव्रत। वडे-वडे श्रावको ने पौषध व्रत ग्रहण किए है--जिनकी सपत्ति और वैभव का ज्ञान किया जाए तो आज का मनुष्य आश्चर्य किए विना नही रहेगा। परन्तु सपत्ति और वैभव होने पर भी वे उनमे आसक्त नही वने। उन्होने व्रत ग्रहण किए, सामायिक की और महीने के छ पौपध की आराधना की। आनन्द एक ऊँचे दर्जे के श्रावक हो गए है। उनके वैभव की स्थिति की आप कल्पना तक नही कर सकते है। पाच सौ 'हलवा' तो उनके पास जमीन थी। एक 'हलवा' अढाई वीघे का होता है। गायो के चार गोकुल उनके पास थे। एक-एक गोकुल मे दस-दस हजार गाये थी। आप कल्पना तो कीजिए कि जिनके पास इतना वाह्य-वैभव हो, उन व्यक्तियो को विश्राम-स्थान का क्या ध्यान भी आ सकता है ? क्या वे कभी आत्मा और परमात्मा का चितन करने के साथ महीने मे छ दिन साधु की तरह जीवन बिताने को तैयार हो सकते है ? ऐसे विरले ही व्यक्ति निकल पाते हैं। इस पचम काल मे तो और भी बडी विकट समस्याए हैं। नास्ति फिर भी नही है। जहा आत्मा की जागृति अन्त करणपूर्वक होती है, वहा व्यक्ति इन वैभवो से घृणा

करने लगता है और अपनी आध्यात्मिक जागृति की तरफ विशेष ध्यान देता है।

मेरे भाई-वहिन शक्ति के अनुसार ऐसा करते है और उन्हे करना ही चाहिये। यदि उन्हे आत्मिक शाति का अनुभव करना है, विश्राम पाना है तो जीवन को व्यर्थ नही गवाना चाहिये। यदि आप इस वक्त ही ऐसा नही करेंगे तो फिर कब करेंगे? आप अपने जीवन को देखिए। वर्तमान जीवन मिला है और वह चला जाने वाला है। आप आराधना की दृष्टि से जीवन मे साधना करे। फिर आपको पता लगेगा कि हम किसी विश्राम के स्थान की ओर जा रहे है। यदि यह अमूल्य जीवन हाथ मे से निकल जायेगा तो फिर पछताने से कुछ भी बनने वाला नही है।

एक साधक अपनी साधना करने की दृष्टि से सोचने लगा कि मुझे पूर्ण विश्राम का स्थान, साधुत्व ग्रहण करना है। परन्तु पहिले मै साधुत्व को परिपक्व बनाने के लिये कुछ साध लू। अतः वह जगल मे गया और साधना करने लगा।

सयोगवश उसको जगल मे पारस का एक टुकडा मिल गया। उसको पता था कि इस टुकडे को यदि लोहे के साथ सम्बधित कर दिया जाए तो लोहा भी सोना बन सकता है। परन्तु उसने सोचा कि अब मुझे इससे करना क्या है? मै तो अभी साधना के क्षेत्र की तैयारी कर रहा हू। यदि मैं काफी लोहे को सोना बना कर अपने पीछे छोड गया तो भी उससे कुछ बनने वाला नही है। फिर भी उसने पारस को उठा लिया।

अब वह अपने मन का परीक्षण करने की दृष्टि से फक्कड होकर चल रहा था। अत सीधी-सादी अवस्था मे उसने एक नगर मे प्रवेश किया। उसने अपने मन मे सकल्प कर रखा था कि मेरी सादगी और साधना की स्थिति कोई स्वय अनुभव करे और मुझे भोजन के लिये स्वय कहे तो भोजन ग्रहण करना है, अन्यथा नही। अभी

तो मै गृहस्थ ही हू, पूर्ण साधु नही बना हू । अत मैं स्वतन्त्र हूँ । मैं पर-घर मे मागने की स्थिति मे नही हूँ ।

वह शहर मे गया और सर्वत्र घूम कर निकल आया परन्तु किसी की दृष्टि उस सीधी-सादी पोशाक वाले पर नही पडी ।

जब वह लौट रहा था तो सहसा एक द्वार उसके सामने आया । वहा एक भडभूजा भू गडे बेच रहा था । वह अपना कार्य करते-करते उस परदेशी को देखता है । बाहरी वैभव उसके पास नही था परन्तु उसकी दृष्टि मे अनूठी शक्ति थी । वह उस व्यक्ति को पहिचान गया । उसकी आकृति से उसके अन्दर का अनुमान लग गया । वह सोचने लगा कि यह उन्नत भावना की ओर जाने वाला कोई न कोई पवित्र साधक मालूम होता है । इसकी आकृति बडी भव्य है । इसकी दृष्टि मे चचलता नही है । यह साधना की दृष्टि से जीवन मे ऊँची कामना लेकर चल रहा है । क्या ही अच्छा हो कि इस व्यक्ति का मैं यथायोग्य सत्कार करूँ ।

भडभूजा अपने छोटे से धधे को छोड कर राजमार्ग पर खडे हुए उस अपरिचित साधक को प्रणाम करता है और कहता है—"महाशय जी, मेरी कुटिया को पावन कीजिए । मैं आपके चरणो मे अपनी कुछ सेवा अर्पित करना चाहता हूँ ।"

भडभूजे की विनम्र वृत्ति को देख कर वह साधक सोचने लगा, "यह मेरे स्वय के जीवन का देख कर प्रभावित हुआ है । मेरा इससे कोई परिचय नही है । यह भोजन के लिए कहता है तो मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये ।"

साधक उसके घर पर पहुँच गया । उस गरीब के पास दूकान मे जो कुछ भी था, भीलनी के बेरो की तरह उसने लाकर साधक का सत्कार किया । साधक ने प्रेम और स्नेह के साथ उसके सत्कार को स्वीकार कर लिया ।

साधक सोच रहा है कि मुझे साधुव्रत की पूर्ण अवस्था पाने

के पहिले अठारह वर्षो तक कुछ ऐसी झाड़ियो और गुफाओं में रहना है, जहा कि मै अधिक से अधिक मन को वश मे कर सकू और आत्मा की शाति अनुभव कर सकू । मैं जगल मे जा रहा हू तो यह पारस का टुकडा मेरे क्या काम आएगा ? यदि इसे लेकर मै गया भी तो रात-दिन इसकी तरफ मेरा ध्यान जाएगा और मैं अपनी साधना पूरी नही कर पाऊगा । यह भडभूजा गरीब है और इसने नि स्वार्थ भाव से मेरा सत्कार किया है। यह पारस इसी को सौप दिया जाए तो यह सुखी हो जाएगा । फिर अठारह वर्षों के बाद जव मैं आऊगा तो इसको लेकर कुछ लोहे का सोना बना डाल्गा और उसे ऐसे ही गरीव लोगो को बाट दूगा । इस प्रकार पूर्ण साधु की स्थिति से मैं इस आत्मा के चरम विश्राम-स्थान को प्राप्त कर लूगा ।

इस विचार से पूरित होकर वह उस भूगडे बेचने वाले को बोला, "भाई, यह लो । मेरे पास और तो कुछ नही है । बस, यह छोटा-सा पत्थर का टुकडा है। परन्तु यह बहुत कीमती है। यह पारस का टुकड़ा है। यदि लोहे के साथ इसका सयोग कर दिया जाये तो लोहा भी स्वर्ण बन जाएगा। अठारह वर्षो तक तुम जितना चाहो, उतना सोना वना लेना और फिर मुझे यह वापस दे देना ।"

इस प्रकार पारस को सदुपयोग मे लगाने के लिए उसने उसे भडभूंजे को दे दिया । वह गरीब आदमी भी खुश हो गया । उसने पारस का टुकडा लेकर साधक को विदा कर दिया ।

भडभूजे ने सोचा कि अव क्या है, अव तो मै दुनिया भर के लोहे का सोना वना सकता हूँ । उसने पारस को सुरक्षित स्थान पर रख दिया और फिर वह वाजार मे जा पहुँचा । वहा लोहा वेचने वाले की दूकान पर जाकर उसने लोहे का भाव पूछा । पुराने जमाने की वात है। लोहा वेचने वाले ने कहा, "भाई, पन्द्रह रुपए का भाव है।" उसने सोचा कि अभी कुछ दिन वाद जव लोहा सस्ता हो जाएगा तव खरीद लूगा । अभी ऊचे भाव का लोहा क्यो खरीदूं ? वह

घर चला आया और अपना कार्य करते हुए खुशिया मनाता रहा कि वह जब चाहे लोहे का सोना बना लेगा ।

कई महीने बीतने पर एक दिन फिर वह बाजार मे पहुँचा और लोहे का भाव पूछा तो मालूम हुआ कि तेरह रुपए का भाव था। उसने सोचा कि अभी तो भाव अधिक है। पहिले पन्द्रह था और अब तेरह हो गया है । भाव और उतर जायेगा तब सोना बना लूगा ।

कुछ वर्षों के बाद वह फिर बाजार मे पहुचा तो लोहे का भाव आठ रुपए था । उसे यह भी अधिक प्रतीत हुआ। ऐसा करते-करते उसने छ रुपए तक का भाव देख लिया। फिर भी उसने सोचा कि अभी नही, जब दो-तीन रुपए का भाव हो जाएगा, तब सोना बनायेंगे।

ऐसा करते-करते इरादे-ही-इरादे मे अठारह वर्ष पूरे हो गए और वह एक तोला भी सोना नही बना सका । समय पर अचानक वही साधक आ गया । उसने कहा, "लाओ भाई, पारस का वह टुकडा ।" भडभूजा ईमानदार था। उसने कहा, "मैं तो कुछ भी नही कर सका।" साधक ने कहा, "तुम कुछ भी नही कर सके तो अब मैं क्या करू? अरे ! इतने वर्षों तक यह तुम्हारे पास पडा रहा, फिर भी तुम इसका कोई फायदा नही उठा सके !"

यह तो एक रूपक है। उस भडभूजे की गरीबी मिटाने के लिए साधक ने उसे पारस का टुकडा दिया था, परन्तु उसने प्रमाद, आलस्य और लोभ के वशीभूत होकर चक्कर ही चक्कर मे सारा समय खो दिया और सोना नही बना सका। अब कितना ही प्रयत्न करे तो भी क्या वह टुकडा उसे मिलने वाला है ?

ऐसे ही आज का यह मनुष्य-तन पारस के टुकडे से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । उसमे आत्मा को सोना बनाने का प्रसग है । सामायिक, पौषध, व्रत-नियम आदि धारण करके विश्राम-स्थान पर पहुँचने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु मेरे भाई बालक-अवस्था मे सोचते है कि अभी क्या है ? अभी तो खाने-पीने की अवस्था है, खेलने-कूदने की

अवस्था है। जवानी आएगी तब देखेंगे। और जब जवानी आ गई तब सत कहते है, "भाई, अब तो विश्राम-स्थान पर पहुँचोगे ?" इस पर वे कहते हैं, "महाराज, अभी तो जवानी है। खाने-कमाने और मौज-शौक के दिन है। अभी तो शरीर मे ताकत है। हा, जब वृद्धावस्था आएगी, तब वहा पहुचेगे ?"

ऐसा करते-करते जब वृद्धावस्था आ पहुँचती है और सत कहते है कि अब तो कुछ करो। वे कहते है, "महाराज, अभी तो बाल-बच्चों की शादी करनी है। धर्म और आत्मा-परमात्मा की बाते तो फिर करेंगे। जब साठ वर्ष के हो जाते है और सत कहते है कि अब तो कुछ करो। तब वे कहते है, "महाराज, कुछ तो करेंगे। परन्तु क्या करें, समय ही नही मिलता। बच्चे काम करते है परन्तु वे दूकान मे कुछ बिगाड न कर डालें, इस चिन्ता से वहा का काम भी देखना पडता है। मन उधर ही लगा रहता है।"

जब ऐसी स्थिति हो तो क्या कहा जाए ? क्या वे मनुष्य-तन रूपी पारस की कद्र कर रहे है ? वे विश्राम कर रहे है या अशाति के झूले मे झूल रहे है ? ऐसे व्यक्तियो को अपने जीवन की कीमत नही है। प्रभु के चरणो मे पहुँच कर इन्हे विश्राम करना चाहिये परन्तु ये तो और अधिक थकान महसूस करके ससार मे परिभ्रमण करने की ही सोच रहे हैं।

आप स्वय बुद्धिमान है। जीवन की लगन है तो कुछ सोचिए। जिनके जीवन मे इस प्रकार की समझ आ गई है कि यह जीवन पारस के समान मिला है तो उन्हे चाहिए कि वे इसे भगवान के रास्ते पर पहुँचा देवे।

चौथी अवस्था मे भी यदि आत्मा और परमात्मा की साधना तथा कर्मो के विश्राम-स्थान की ओर बढने का मौका मिल जाए तो जिंदगी की चौथी अवस्था तो शातिपूर्ण हो सकती है। यदि ऐसा किया जाए तो अंतिम समय मे हाय-हाय करते नही जाना पडेगा, जैसे

कि वह भड़भूजा हाय-हाय करते वैसा का वैसा ही रह गया।

पश्चात्ताप न करना पड़े, इससे पहले ही प्रथम विश्राम-स्थान पाने के लिए कोशिश करनी चाहिये। यह सबका काम है। जिन व्यक्तियों ने इस स्वरूप को समझ लिया है, वे सम्यक्-दृष्टि के विश्राम-स्थान को पा गए हैं।



बीकानेर—
सं० २०३०, श्रावण शुक्ला ६

# समता-जीवन-दर्शन

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,

धीग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?

विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्या वाछित काज ।

विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना आत्मिक विमलता प्राप्त करने के लिए की जा रही है । जब तक आत्मा मल-रहित नही बनती, तब तक उसे वास्तविक आत्मिक साम्राज्य के दर्शन नही होते । जीवन में अनेक तरह के प्रसग आया करते है परन्तु उन प्रसगो के बीच भी यदि व्यक्ति की शुद्धवृत्ति बनी रहे और वह जीवन की चरम सीमा के निर्मल स्वरूप को सामने रख कर गतिशील रहे तो अवश्य ही वह परमात्मा के दर्शन कर सकता है ।

जिस आत्मा मे से मल, विक्षेप और आवरण नाम के तीन दूषण हट गए है, वही आत्मा विमलनाथ के नाम से प्रयुक्त हुई है । जिनको शुद्ध स्वरूप मे विद्यमान अनन्त अव्याबाध सुख का अनुभव हो रहा है, उन सब आत्माओ को विमलनाथ के नाम से पुकारा जा सकता है । जिस साधक के मन मे पूर्ण विमलता का लक्ष्य स्थिर हो गया है, वह साधक भी उस निर्मलता को पाने के लिए अपने जीवन के प्रत्येक छोर को देखने की कोशिश करेगा और इस बात का ध्यान रखेगा कि मेरे वर्तमान जीवन मे कहा मलिनता है और कहा निर्मलता है ?

मलिनता का रूप तो प्राय सर्वत्र दृष्टिगत हो रहा है। इस मलिनता के विषवृक्ष के कारण ही व्यक्ति मे विषमता है और व्यक्ति

की विषमता परिवार तथा समाज को प्रभावित कर रही है। परन्तु समाज मे यदि इस विष-वृक्ष की विषमता पनपने लगी तो समूचा राष्ट्र उससे अछूता नही रह सकता। यदि राष्ट्र इस विषमता के विषांकुर मे व्याप्त हो जाता है तो सम्पूर्ण विश्व इसकी छाया से व्याप्त हुए बिना नही रह सकता। इस मलयुक्त अवस्था ने ही विषमता को पनपाया है परन्तु इस विषमता को समाहित करने के लिये इस के प्रतिपक्षी तत्त्व को समक्ष रखा जाए तो विषमता का विषांकुर समता के रूप मे परिणत हो सकता है।

इस जीवन के अनुसधान मे यदि सही तरीके से चिंतन किया जाए तो मानव का चरम-लक्ष्य समता का ही बनता है। वह विमलता के धरातल पर समता की चरम सीमा पर पहुंचने की कोशिश करे तो अपने जीवन के अणु-अणु मे आत्मा की पूर्ण निर्मलता और समता-प्राप्ति की साधना कर सकता है।

मस्तिष्क जीवन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। उसमे विषमता के विष-वृक्ष का अंकुर भी है और समता का पौधा भी है। दोनो का स्थल एक ही है, जैसे कि एक ही भूमि मे अफीम भी बोई जा सकती है और गन्ने का पौधा भी उगाया जा सकता है। परन्तु यदि गन्ना उपजाना है तो अफीम की खेती को हटाना होगा और उस जमीन को साफ-सुथरी बना कर सम-अवस्था मे लाना होगा। अफीम सम्बन्धी विषम तत्त्व को हटा कर यदि गन्ने का पौधा आरोपित किया जाता है तो उसी धरती से अमृत तुल्य गन्ने की मधुरता उपलब्ध हो सकती है।

मनुष्य के मस्तिष्क की इस उजाड़ भूमि मे अफीम के तुल्य मद, विक्षेप और आवरण की खेती लहलहा रही है, जिसके परिणाम-स्वरूप आत्मा सन्ताप पा रही है और उसे शांति के क्षण नहीं मिल रहे है। जिधर देखो उधर अशांति का जाल ही दृष्टिगत हो रहा है। ऐसी जगह पर, यदि समता रूपी इक्षु-रस की खेती उपजाना है तो

उस मल, विक्षेप और आवरण रूपी अफीम को साफ करना होगा और मस्तिष्क की तमाम विचारधाराओं को समता-सिद्धात से ओत-प्रोत करके उसे समतल बनाना होगा। मनुष्य का मस्तिष्क समता-सिद्धात से परिमार्जित होना चाहिए। इस समता-सिद्धात-दर्शन मे समस्त मानव-जाति का समावेश है, सपूर्ण विश्व की समता का बीज इसमे समाया हुआ है।

यदि मनुष्य का मस्तिष्क समता-सिद्धात-दर्शन से आप्लावित होकर शुद्ध बन जाए तो वह उसमे समता-सिद्धात-दर्शन का बीजारोपण कर सकता है। और यह बीज यदि उस शुद्ध भूमि मे बो दिया गया तो जीवन का कोई भी भाग उस समता-दर्शन से अछूता नही रहेगा।

यदि व्यक्ति के मस्तिष्क मे समता-जीवन-दर्शन का बीज अकुरित हो गया है तो उसकी वाणी मे समता का प्रवाह बहने लगेगा, उसके नेत्रों से समता का झरना बहेगा, उसके कानों मे समता का नाद गूजेगा, उसके हाथ समता के कार्य मे अग्रसर होगे, उसके पैरो की गति समता-जीवन की साधना मे तत्पर होगी, उसके शरीर के अणु-अणु में से समता-जीवन-दर्शन का प्रकाश फूट पडेगा और वह समता की परम पावनी गंगा बहाता हुआ, जन-जन के मन को पवित्र करता हुआ चलेगा।

यद्यपि आपका अतर्मन अभी विषमता की ओर आकर्षित है लेकिन वह विमलनाथ भगवान के चरणो मे पहुचने को तत्पर है। इस तत्परता के साथ आप समता के उस स्वरूप को, जो समता-जीवन-दर्शन के नाम से आपके सामने कुछ नियमपूर्वक आ सकता है, अपनाने की कोशिश करे, जिससे कि आप आध्यात्मिक-जीवन के साथ शात-क्राति का ऐसा बिगुल वजा सके, जो अनैतिकता की पहाडियो को तोडता हुआ नैतिकता के साथ आध्यात्मिक जीवन की पवित्र धारा से प्रत्येक मानव के अन्दर आनन्द उत्पन्न करने वाला बन जाये।

इसके लिए कथनी की अपेक्षा आचरण की आवश्यकता विशेष

है। कथनी और करनी में यदि सामंजस्य आ जाता है, व्यक्ति जैसा कहता है, उसी के अनुरूप यदि उसे शक्ति के अनुसार आचरण में लाता है तो उसका जीवन किसी भी क्षेत्र में रहे, वह चमके बिना नही रहेगा।

व्यक्ति के अन्दर समता-जीवन-दर्शन आ सकता है। जब व्यक्तियों का समूह मिल जाएगा तो समता-सूचक-दर्शन की अवस्था बनेगी और वही आगे बढ कर विश्व की शांति का एक अमोघ उपाय प्रसारित कर सकेगा। समता-जीवन-दर्शन को आप सिर्फ वाचिक दृष्टि से ही नही सुने परन्तु उसको जीवन के अन्तःकरण के धरातल पर उतारते हुए सुने।

समता-जीवन-दर्शन के बिना शांति होने वाली नही है। अन्य अनेक प्रयत्न चाहे किसी धरातल पर होते हो, वे किसी भी लुभावने नारे के साथ हो परन्तु जीवन में जब तक समता-दर्शन नही होगा, तब तक वे सब नारे केवल नारो तक ही सीमित रहेंगे और उनके साथ विषमता की जडे हरी होती हुई चली जायेगी। इसलिए समता-जीवन-दर्शन को मुख्यतया अपने जीवन मे उतारने के लिए तत्पर हो जाते है तो मानव-जीवन मे एक नए आलोक और एक नई शांत-क्रांति का प्रादुर्भाव हो सकता है। समय-समय पर शांत-क्रांति का शंखनाद करने वाले ऐसे महापुरुष हो गए है। वे त्यागीवर्ग में से भी आए है और गृहस्थो में से भी। ऐसे व्यक्तियो ने समाज के प्रांगण में शांत-क्रांति को तीव्र गति दी है।

मैं प्रायः आपके समक्ष त्यागीवर्ग का विषय रखता हूं और उस शांत-क्रांति के हेतु त्यागीवर्ग की विचारधारा मे आप लोगो का जीवन रचना हुआ-सा जा रहा है। आचार्यश्री हुक्मीचंद जी म० सा० ने शांत-क्रांति का सूत्र-पात किया और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की स्थिति को सुदृढ बनाया। उन्होने साध्वाचार में समता के बजाय जब विषमता की जडे हरी होती देखी, नियमो की अवहेलना होती देखी, साधु-मर्यादा का पूर्णतया पालन होते हुए नहीं देखा तो उनकी आत्मा

तिलमिला उठी। वे चले थे स्वकल्याण की इच्छा से परतु उनकी क्राति की यह पावन धारा जनमानस को पवित्र करती हुई बहने लगी और उनके पीछे, एक के बाद एक, महापुरषो की शृखला उस पवित्र क्राति की धारा के साथ जुड़ती ही गई।

हम ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करते है तो पता चलता है कि पूर्वकाल मे भी बारहवर्षीय दुष्काल मे जब समाज मे विषमता ने पैर फैलाए, अनैतिकता के कारण मानव-जीवन बिगड़ने लगा और अनैतिकता का बोलबाला धार्मिक क्षेत्र मे भी प्रवेश कर गया तो ऐसे मौके आए कि गृहस्थो मे से भी बुद्धिशाली व्यक्तियो ने सक्षमता के साथ उस शात-क्राति की आवाज को बुलद किया।

जो बाहरी रत्नो को परखने की शक्ति रखते है, वे अन्दर के रत्नो को भी पहिचानने की कोशिश करे। स्वर्गीय आचार्य श्री गणेश-लाल जी महाराज फरमाते थे कि जिसका दिल बहुत मजबूत होता है, वही व्यक्ति रत्नो को परख सकता है। रत्नो का व्यापारी होना सहज नही है। इस व्यापार के साथ कई व्यक्ति पत्थर सरीखे हृदय के अर्थात् आध्यात्मिक जीवन से शून्य बन जाते है। परन्तु जिनका जीवन इन रत्नो के साथ आसक्त नही है, वे रत्नो के परीक्षण के साथ-साथ जीवनरत्नो को पहिचानने मे भी सक्षम बन जाया करते है।

अहमदाबाद के प्रसिद्ध सेठ, जो लोकाशाह के नाम से ऐति-हासिक पृष्ठो मे प्रख्यात है, एक जौहरी के पुत्र थे। उनकी भी जीवन गाथाये अजब ढग की थी। उनके पिताश्री ने कुछ बहुमूल्य हीरे खरीदे। उन्होने सोचा कि ये बहुत कीमती है, अतः जितनी सम्पत्ति थी, वह सब उन हीरो के खरीदने मे लगा दी गई।

उनके परिवार मे जौहरी जी स्वय, उनकी धर्मपत्नी और एक पुत्र ये तीन ही प्राणी थे। कालान्तर मे उनको ज्ञात हुआ कि मैं ठगा गया हूँ। यह तो कच्चा (झूठा) माल है। ये काच के टुकड़े है। मेरी दृष्टि चूक गई और मैंने सारी सम्पत्ति इसमे लगा दी!

इसी चिंता ने उनके जीवन को झकझोर दिया। अन्ततोगत्वा वे मरणासन्न स्थिति में पहुँच गये। मरने से पहिले उन्होंने अपने परिवार से कहा कि मैंने बहुमूल्य नगीने खरीद रखे हैं। जब कभी आवश्यकता हो तो मेरे मित्र अमुक जौहरी के माध्यम से इनका विक्रय करवा कर अपने जीवन की स्थिति को ठीक रखना। उन्होंने सोचा कि मैं तो ठगा गया परन्तु पत्नी के सामने यह बात कह दी तो उसका दिल बैठ जाएगा और यदि पुत्र को कह दूंगा तो उसकी क्या दशा होगी? अत उन्होंने यह बात मन में रखी और वे काल कर गए।

उनका पुत्र अभी विद्याभ्यास कर रहा था। आर्थिक स्थिति कमजोर हो चुकी थी। खाने-पीने के साधन कम होने लगे। तब माता ने एक नगीना देते हुए पुत्र से कहा, "अमुक जौहरी जी तेरे पिता के मित्र हैं, उनके पास इस नगीने को रख कर कुछ रुपए ले आ, जिससे कि अपना काम चल सके।"

बालक नगीना लेकर जौहरी जी के यहा गया और बोला कि माता ने कहा है कि आप इस नगीने को अपने पास रख कर कुछ रुपए दे दीजिये। जौहरी जी नगीने को देखते ही पहिचान गए कि यह खरा नहीं है। परन्तु इस वक्त यह बच्चा लाया है, अत इसे ऐसा कहूंगा कि यह नगीना खोटा है तो मुझ पर इसकी माता विश्वास नहीं करेगी और सोचेगी कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसी बात कही है। अत उन्होंने यही कहा कि तुम इसको अभी तिजोरी में ही रखो। जब प्रसंग आएगा, तब इसे बेचेंगे। परन्तु कल से तुम यहा दूकान पर बैठो और जवाहिरात का धंधा सीख कर अपनी आजीविका चलाओ। बालक ने वैसा ही किया। जौहरी का बच्चा जौहरी ही निकला और उसने जवाहिरात के धंधे में जल्दी ही प्रवीणता प्राप्त कर ली।

उस समय राजाओं का जमाना था। राजा लोग बहुमूल्य हीरे-मोती नगीना रखते थे। एक बार महाराजा ने बाहरी व्यापारियों से माल खरीदने की दृष्टि से अपने नगर के जौहरियों को इकट्ठा

किया। बाहर के व्यापारियो के पास कुछ मोती थे। वे खरे है या खोटे, इस बात की परीक्षा करने के लिए एक कमेटी बनाई गई तो जौहरी का यह लडका भी वहा पहुँचा। सब जौहरियो ने मोतियो की परख करके कहा कि प्रत्येक मोती सवा-सवा लाख रुपयो का है।

यह लडका भी वही गभीर आकृति धारण किये बैठा हुआ था। महाराजा की दृष्टि इस पर गई तो उन्होने पूछा कि यह कौन है ? उन्हे बतलाया गया कि वह भी जौहरी है। महाराजा ने इससे पूछा, "तू क्यो नही बोलता है ?" इसने निवेदन किया, "मेरे बुजुर्ग बोल चुके है तो मैं अब क्या कहूं ?" इस पर उसे कहा गया कि तुमको भी बोलने का हक है, तुम भी कुछ कहो। इस पर उसने कहा, "महाराज, क्षमा करे। इन मोतियो में से दो मोती तो खरे है और सवा-सवा लाख की कीमत के है परन्तु तीसरा मोती तो सवा कोडी का भी नही है।

यह सुन कर सबको आश्चर्य हुआ और वे उसकी ओर देखने लगे। बेचने वाले व्यापारी भी मलिन भावना से कुछ का कुछ सोचने लगे, चिंतन करने लगे।

उस वक्त महाराजा ने सोचा कि यह लडका जो कुछ कह रहा है, उसमे तथ्य होना चाहिए। इसकी बुद्धि मे कुछ पैनापन है। इससे पूछा गया कि मोतियो की परीक्षा कैसे की तो इसने उत्तर दिया, "महाराज ! मैने अपनी दृष्टि से परख की है। इस मोती को बिंधवाया जाये। यदि यह फूट जाए तो समझ लीजिये कि यह खोटा है।

परीक्षा करवाई गई तो वैसा ही हुआ यह देख कर सब जौहरी आश्चर्य करने लगे कि हमने काफी गहरी दृष्टि से देखा था परन्तु इस लडके की पैनी दृष्टि कितना काम करती है ! वे जौहरी थे। उनके मन में इस लडके की प्रवीणता को देख कर ईर्ष्या नही हुई। वे समता के साथ सोचने लगे कि यह बडे सौभाग्य की बात है कि हमारे बीच मे छोटी उम्र का एक ऐसा बालक भी निकला, जो हम

सब जौहरियों की लाज बचा सका। उन्होंने इस स्थिति को मान-अपमान का विषय न बना कर समता के साथ चिंतन किया। फल-स्वरूप उस बालक को सब जौहरियों का सिरमौर बना दिया गया।

उस बालक के पिता के मित्र ने जब यह देखा कि वह जवाहिरात की परीक्षा मे पूर्ण प्रवीण हो चुका है तो एक दिन दूकान पर ग्राहक आने पर उसने बालक से कहा "अब तुम अपने पिता के खरीदे हुए नगीने बेच दो।"

बालक घर पर गया और अपनी माता से बोला, "वे नगीने लाओ, उन्हे बेच देवे।" माता ने नगीने निकाल कर दिये तो उसने देखते ही कहा कि ये तो काच के टुकडे है। मा ने कहा, "अरे, तुम्हारे पिताजी तो कहते थे कि ये खरे है।" लडके ने उत्तर दिया, "पिताजी कहते सो ठीक है परन्तु मैं कहता हूँ, वह भी ठीक है।"

माता ने उस पर विश्वास किया। जौहरी जी को मालूम हुआ कि परीक्षण ठीक किया गया है।

इस प्रकार से जवाहिरात के क्षेत्र मे तीक्ष्ण बुद्धि का प्रयोग करने वाले जब धार्मिक क्षेत्र मे प्रवेश करते है तो वे इन भौतिक तत्वो मे लिप्त नही होते। वे चिन्तन करते है कि समाज के इन पदार्थों से तो ऊपर की जाच होती है परन्तु आध्यात्मिकता से आन्तरिक जीवन निर्मल और पवित्र बनना है।

लोकाशाह ने भी ऐसा ही सोचा और वे सतो की सेवा मे जाने लगे तथा बिना संकोच दिन खोल कर धार्मिक कार्य करने लगे। वे सोचते थे कि मुझे अपना जीवन निर्मल बनाना है। समाज का क्षेत्र बडा है। आध्यात्मिक काम किसी एक का नही है। मैं ऐसा करूगा तो मेरा जीवन निर्मल बनेगा। मुझे अग्रसर होकर सेवा का कार्य करना चाहिए।

इनकी सेवा की भावना मे अन्दर की पवित्रता के साथ समता की स्थिति थी। अतः वे जनमानस मे जल्दी ही प्रतिष्ठित हो गए।

सबके मस्तिष्क मे उनका व्यक्तित्व समा गया । निर्ग्रन्थो की सेवा का प्रसग आया तो उन्होने दिल खोल कर सेवा की परन्तु जब वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसमे भी दृढतापूर्वक आगे वढे । कथा-भाग की दृष्टि से अड़तालीस वडे-वडे गृहस्थो ने त्याग-मार्ग को अपनाने का सोचा और सोचा ही नही, वे आगे भी आये । उन्होने तत्परता के साथ शात-क्राति का प्रचार और प्रसार किया । यह सब आप ऐतिहासिक पृष्ठो से पढ सकते है ।

इस प्रकार समय-समय पर त्यागी सतो मे त्यागवृत्ति के शब्द उद्बोधित हुए है तो त्यागी गृहस्थवर्ग मे से भी ऐसे लोग आगे आए है । मैं तो अपनी स्थिति से देखता हूँ कि जो भी व्यक्ति अपने जीवन मे गुण ग्रहण करेगा, वह वस्तुत. समता-जीवन-दर्शन के साथ ढलेगा और दूसरो के जीवन को भी इस ओर मोडने की कोशिश करेगा ।

इस प्रकार से जीवन मे जागृति का प्रसग आए तो युवक क्या पीछे रहेगे ? मै युवको से कहूगा कि वे दिल-दिमाग से उत्साहित हों तथा बिना स्वार्थ-भावना के साथ तत्पर होकर समझे । जो समता-जीवन-दर्शन मे सब कुछ लगाने को तत्पर होते है, वे सब युवक है । उम्र से कोई कैसे भी हो । जहा उत्साह है, वहा तरुणाई है । जो दिल से उत्साही है, वे सब तरुण है ।

परन्तु आज का तरुण-वर्ग कानो मे तेल डाल कर सोया हुआ है । तरुण सोचते है कि धर्म करना तो वृद्धो का काम है । हम को तो राजनीति में भाग लेना है या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है । यह वर्ग जीवन के लक्ष्य को भूला हुआ है । उसको सोचना है कि अपना काम करते हुए भी जीवन के प्राण समता-दर्शन को नही भुलाना है । युवको को तो नये जोश से आगे आकर इसमे अग्रसर होना ही चाहिए और एक-दूसरे के दिल को जीतना चाहिए ।

हमको यह जीवन मिला है तो ऐसे ही नही चला जाए, कुछ न कुछ भला तो इस जीवन मे अवश्य ही कर गुजरे । अनैतिकता की

स्थिति पर चिंतन करके परिवार और समाज मे समता-जीवन-दर्शन आए, राष्ट्र और विश्व मे समता-जीवन-दर्शन आए, ऐसी भावना यदि तरुणो मे आ जाती है और वे जाग जाते है तो सब कुछ करके दिखला सकते है। परन्तु आज की युवा पीढ़ी जिस रूप मे चल रही है और उसकी जो दशा है, उसको देख कर कभी-कभी विचार होता है कि तरुणो मे जोश है परन्तु इनमे थाडे से होश की जरूरत है। वह आ जाए तो ये कुछ का कुछ करके दिखला सकते है।

युवको मे इस प्रकार की स्थिति हर क्षेत्र मे बननी चाहिए—चाहे वह थली प्रात हो, मालवा हो या अन्य स्थान हो। उनमे एक जागृति आ जाये, क्राति का स्वर आ जाए और वे सोचे कि हमको अपने जीवन मे समता-दर्शन अगीकार करके चलना है, हमे आत्मा को जीतना है और समाज मे एक नयी लहर पैदा कर देना है तो उन्हे जीवन के दुर्गुणो को दूर फेंक देना चाहिए।

आज की युवा पीढी मे कई कुव्यसनो के लाछन है। आज का युवकवर्ग उनका दास बन गया है। वे शरीर से तरुण है परन्तु कुव्यसनो की दृष्टि से बूढे हो चुके हैं। यदि जीवन मे बीडी, सिगरेट, तम्बाकू आदि के कुव्यसन है तो ये तरुण जीवन को वृद्ध बनाने वाले ही है।

क्या यह जीवन के साथ खिलवाड नही है? क्या जीवन को इस प्रकार से व्यर्थ मे बर्बाद करना चाहिए? जिनके मस्तिष्क मे ऐसे कुव्यसन प्रवेश कर जाये, जो नैतिकता का धरातल भूल कर गिर जाये तो ऐसे युवको को क्या युवा-पीढी मे लेगे? अरे, इनसे तो वे हो ही सकते है, जो कुव्यसनो से दूर है और समता-जीवन-दर्शन का लक्ष्य बना कर चल रहे है। निश्चय ही वे तरुण है।

बन्धुओ! ऐसे कुव्यसनो से जीवन का कितना नाश हो रहा है। आज डाक्टर घोषणा कर रहे है कि कैंसर की बीमारी का मुख्य कारण सिगरेट है। डॉक्टरो के पास इसका इलाज नही है। वैज्ञानिक

भी हैरान है । फिर भी लोग उसके आधीन होकर चल रहे है । ऐसे व्यक्ति क्या अपने जीवन मे समता-दर्शन ला सकते है ? उनमें यदि वल है तो इन कुव्यसनो को दूर फैंक देना चाहिए । जब तक नही समझा तब तक इनमे फसे रहे परन्तु समझ कर तो इनसे दूर हट जाना ही चाहिए । शराब, मास, अण्डे आदि सब दुर्व्यसन है । वे सम्पूर्ण युवा-पीढी के जीवन मे से हटने ही चाहिए ।

समता-जीवन-दशन की सर्वत्र आवश्यकता है । यह मानव-मात्र का जीवन है । जीवन के धरातल को ठीक करने के लिए समता सिद्धात-दर्शन के आधार पर आप समता-जीवन-दर्शन को ग्रहण करेगे तो अपने जीवन को आगे बढा सकेगे ।

यदि एक प्ररूपणा, एक फरसना, एक अनुशासन, एक इशारे पर अपने अभिमान को न रखते हुए नि स्वार्थ भावना से जीवन की स्थिति को समझ लिया जाये तो फिर समता-जीवन-दर्शन आने मे क्या देर लगे ? इससे सारे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की स्थिति सुदृढ होकर मानवमात्र के अन्दर समता-दर्शन का सूत्र जुड सकेगा और प्रत्येक मानव-तन मे रही हुई आत्मा अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगी ।



बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला ७

# अमृत का झरना

दुःख दोहग दूरे टल्या रे, सुख संपदशु भेट,
धींग धणी माथे कियो रे, कोण गंजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, म्हारां सिध्यां वांछित काज ।

विमलनाथ परमात्मा के चरणो मे प्रार्थना की पक्तियो के माध्यम से जिस स्वरूप का चिन्तन किया जा रहा है, वह इस आत्मा के लिए अत्यन्त हितावह है। विमलनाथ परमात्मा मोक्ष मे पधार गए और सदैव के लिए वे शुद्ध स्वरूप मे रमण कर रहे है। प्रार्थना की पक्तियो मे उस शुद्ध अवस्था से पूर्व की केवलज्ञानयुक्त अवस्था का वर्णन है। जिस शरीर मे रहते हुए विमलनाथ परमात्मा ने अपने विमल स्वरूप को प्राप्त किया, उस अन्तिम शरीर के साथ चौंतीस अतिशय से युक्त उनका वह दिव्य जीवन जिस समय उपलब्ध था, उस समय की अवस्था का कुछ सकेत दिया जा रहा है। आत्मा अन्दर से जितनी निर्मल होगी, भावनायें जितनी पवित्र बनेंगी, उतना ही जीवन का अणु-अणु पवित्र भावनाओ से प्रभावित होगा।

इस विश्व मे जड और चेतन दो तत्त्व के रूप दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि दोनो का स्वभाव और दृष्टि से भिन्न है परन्तु संसार की दृष्टि से एक दूसरे पर [illegible] प्रभाव की स्थिति बन रही है। आत्मा [illegible] संयुक्त बनती है—कर्मों की [illegible] इसके साथ अनादि-कालीन है। [illegible] के [illegible] सर्वथा जड के रूप मे है परन्तु जिन [illegible] बहुत से पदार्थों से [illegible] करते हैं, [illegible]

साथ सयुक्त हो जाते है और जैसे ही आत्मा के साथ उनका सम्पर्क हुआ, आत्मिक प्रदेशो के साथ वे सलग्न बने, वैसे ही आत्मशक्ति मे शुभ और अशुभ फल देने की शक्ति पैदा हो जाती है । यह आत्मा का जडतत्त्व पर प्रभाव होता है । जब कर्मवर्गणा के पुद्‌गल आत्मा के स्वभाव से प्राय उदय मे आते है, उस समय आत्मा के ऊपर आच्छादित होकर वे आत्मा की पर्याय-शक्ति को दबा देते है । इस तरह से आत्मा का सम्पर्क पाकर कर्मवर्गणा के पुद्‌गल, खध आत्मा को ही आच्छादित कर देते है ।

यह दशा प्राय चलती रहती है परन्तु यह तभी तक चलती है, जब तक कि आत्मा अपने विमल स्वरूप को नही समझती है । जिस समय उसका निर्मल स्वरूप की ओर ध्यान चला जाता है और वह स्वाधीन बन जाती है तो फिर वह कर्मो के उदय से होने वाले प्रभाव को अपने मौलिक रूप मे नही आने देती, बल्कि आत्मा के विचारो की शक्ति का प्रभाव इन पदार्थो पर पड़ता है, जिससे ये पदार्थ आत्मा के अनुरूप चमकने लगते है ।

सूर्य की प्रभा-किरणे जब पत्थरो पर पड़ती है तो पत्थर भी चमकने लगते है । मिट्‌टी के ढेलो पर वे किरणे पडने लगी तो वे भी चमकने लगे । मिट्‌टी और पत्थर मे चमक नही है परन्तु सूर्य के प्रभाव से प्रभावित होकर उनमे भी चमक आती-जाती है । वैसे ही जिन आत्माओ का शरीर निर्मल आत्मा से, निर्मल विचारो से युक्त रहता है, वह शरीर भी उन पवित्र आत्मिक विचारो से प्रभावित हुए बिना नही रहता है ।

यही कारण है कि विमलनाथ भगवान के केवलज्ञान-युक्त शरीर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवन् आपका यह शरीर जिसमे आप केवलज्ञान और केवलदर्शन के साथ विराजमान है, किन परमाणुओं से बना है और यह कैसी विलक्षण रचना है कि जिसमें से अमृत का झरना बह रहा है—

ज्ञान सुधारस पीवती रे, निरञ्जन तृप्ति न होय ।

भव्य प्राणी आश्चर्य करते हैं कि यह जो आपका शरीर-पिण्ड है, आकार है, जिसमे आप विराजमान है और जिस शरीर के अणु-अणु मे आपके आत्मिक प्रदेश रमण कर रहे है, ऐसी इस शरीर की दिव्य मूर्ति, यह शरीर रूपी आकृति मानो अमृत से भरी हुई है ।

अमृत का तात्पर्य है—जिसका मरण नही हो, सदा के लिए अमर हो जाए । ऐसी शक्ति आत्मिक भावना मे रहती है। वह जड-तत्त्व में नही रहती है। जिनमे आत्मिक भावना के विचार नही हैं, आत्मिक विचारो से जो पदार्थ प्रभावित नही है और आत्मा से रहित है, उन पदार्थो मे हरी-भरी रचना नही हो सकती । वह तो तभी होती है, जबकि आत्मा के विचार इस शरीर पर पडते है । शरीर पर विचारो का प्रभाव पडता है और उसके कारण जो शरीर के परमाणु है, शान्त है वे भी अमृत-रस मे हरे-भरे हो जाते हैं । यही कारण है कि जब कभी आध्यात्मिक रस की कवितायें तीर्थंकरो के लिए की जाती हैं तो उनमे भी इसी बात का द्योतन किया जाता है कि—

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

मानतुंग आचार्य ने प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करते समय उनके देव-रूप शान्तरूप शरीर की विशेषता बताते हुए अतिशयो के विषय मे कहा है कि भगवन् ! आपका यह शरीर जिस प्रकार दिव्य और अमृत के [illegible] आनन्द का देने वाला बना हुआ है । मालूम होता है कि जितने भी शान्तरस के परमाणु थे, वे सबके सब आपके शरीर मे आकर समा गए । पृथ्वी मे शान्तरस का ऐसा कोई परमाणु बाकी नही रहा, जो दूसरे के लिए बचा हो । इसीलिए आपका शरीर [illegible] [illegible], [illegible] से युक्त तीनो लोक से बढ़कर एक दिव्य स्वरूप

धारण किये हुए है ।

मानतु ग आचार्य ने जैसे ऋषभदेव भगवान की स्तुति के प्रसग से केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त शरीर का वर्णन करते हुए आत्मा की आभा को प्रकट रूप मे बतलाया है, वैसे ही विमलनाथ भगवान के प्रसग से उनके केवलज्ञान, केवलदर्शनयुक्त आत्मा की मूर्ति मे यही अमिय (अमृत) भरा है, जिसकी उपमा नही दी जा सकती । तीर्थंकर का शरीर जिस समय अतिशयों से युक्त है, उस भामडल और दिव्य शक्तियो की यदि उपमा देने के लिये कोई पदार्थ ढू ढे तो वह मिल नही सकता । कोई पदार्थ ऐसा नही, जिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन-युक्त शरीर की उपमा दी जा सके। इसीलिए कवि कहता है कि मैं उपमा नही दे सकता—

शात सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय ।

आपका शरीर शात सुधारस का समुद्र बना हुआ है । जब आपके दर्शन करने मे मेरे नेत्र तन्मय होते है तो प्रभु ! उस जीवन के दर्शन करने मे वे नेत्र अपलक रह जाते है ।

तीर्थंकर माता की कुक्षी से जन्म लेते हैं तो उनमे अनेक विशेषताये रहती है । परन्तु उस समय इतने शातरस झरने की स्थिति उनकी नही बनती है । जब वे दीक्षा लेते है तो साधना में रहते है। परतु जब उनकी आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त बन जाती है तो शरीर की आभाएं पलट जाती हैं और अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा उनका सारा शरीर विलक्षण दिखलाई देता है । उस समय जो भी भव्यात्माये उनके दर्शन करती है, वे अपने आप मे शाति-सुधारस का पान करते हुए इस प्रकार की अतृप्ति का अनुभव करती है कि उनके सामने से हटे नही, वल्कि टकटकी लगा कर देखते ही रहे। इसीलिए कवि ने सकेत किया है कि--

शात सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय ।

भगवन् ! आपके इस अतिशययुक्त जीवन को देखते-देखते

आत्मा अनुभव करती है, मानो उस शरीर के माध्यम से शान्त-रस का झरना बह रहा हो। मेरी आत्मा अन्दर से काम, क्रोध, मद, लोभ से संतप्त है परन्तु वह उस झरने को देख-देखकर अपने आप में शान्ति का अनुभव करती है। इससे मन तृप्त ही नही होता है और वह सोचती है कि इसको अधिक से अधिक ग्रहण करती रहे।

यह शक्ति हर एक आत्मा मे है। यदि आत्मा अपने विचारो को ठीक रखे, अपने जीवन की समस्त वृत्तियो को बदल दे और शुद्ध भावना मे बहने लगे तो उसके शरीर के परमाणुओ पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना नही रहेगा।

कभी-कभी ऐसा प्रसग आता है कि मनुष्य ऐसे दिव्य विचारो से सपन्न पुरुष को देखते ही अपने आपका भान भूल जाता है। कहा जाता है कि जहा तीर्थंकर भगवान का समवसरण होता है, वहा सिंह और बकरी भी वैर-भाव को भूल कर एक स्थान पर बैठते है। उन पर भी ऐसा प्रभाव पडता है कि क्रूर सिंह भी अपनी हिंसक वृत्ति को भूल जाता है, क्योंकि अहिंसा की धारा शरीर से भी बाहर आती है। इसके लिए पातञ्जल योगदर्शन मे एक सूत्र मे आया है कि—

"अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैरत्याग।"

जिसके जीवन मे अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है, उसके नज़दीक आने पर वैर का भी त्याग हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि समवसरण मे सिंह और बकरी भी पास-पास बैठ कर भगवान तीर्थंकर की वाणी का श्रवण करते है।

यह कोई अतिशयोक्ति नही है। यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिस पुरुष के विचार पवित्र है, पवित्र आचरण से जिसका जीवन सम्पन्न है, उसके बिना बोले ही उससे कुछ ऐसी छाया मिलती है कि हर एक व्यक्ति को शान्ति प्राप्त हो।

संसार मे ऐसा कोई पदार्थ नही है, जिसकी प्रभु के उस अद्भुत-रूप शरीर से उपमा दी जा सके। उनके शरीर मे क्रोध का कोई भी

अश विद्यमान नही है। उनका शरीर शात रहता है। इस शाति के प्रसग से यदि हम उनका चितन करे तो हम भी अपने जीवन को अमृततुल्य बना सकते है।

प्रत्येक मानव मे अमृततुल्य जीवन बनाने की कला है। परतु वह बाहर से नही आती है। मानव अपने आप मे उसका सृजन कर सकता है। विचारो का प्रभाव अणु-अणु पर पडता है और जब आत्मा के प्रदेशो मे अमृत हो तो वह बाहर बहे बिना नही रहेगा। जैसे पानी अलग है और घड़ा अलग है। परन्तु पानी घडे मे भरा हुआ है तो वह उसके अणु–अणु से बाहर आये बिना नही रहेगा। जैसे काच की हडिया अलग है और दीपक अलग है। परन्तु जब दीपक को काच की हडिया मे रख कर जला देते है तो उसका प्रकाश हडिया के अणु–अणु से निकलने लगता है। यदि काच की हडिया दीपक-रहित है तो वह कोई प्रकाश नही देगी। वैसे ही यदि शरीर आत्मा-रहित है तो वह बेकार है–जड है। उसमे शाति सुधा-रस नही है, अमृत का झरना नही है।

· हर एक आत्मा मे शक्ति का चमत्कार है। परन्तु उस शक्ति को प्रकट करने के लिए प्रयत्न अवश्य करना पडता है। प्रयत्न कैसे करे ? उसका भी तरीका है। वह यह है कि आप रात्रि के अतिम प्रहर मे प्रात काल के समय उठ कर अपने जीवन का सशोधन करे। कम से कम एक घन्टे तक साधु के तुल्य दो करण, तीन योग से पापो का त्याग करके बैठे। उस समय प्रभु की पवित्र साधना को अपनी भावना मे लेकर आप चिन्तन करे कि मेरा जीवन ससार मे इस प्रकार से रहे जिससे कि मलिनता का धब्बा उसमे नही लग पाये, कोई कलक-कालिमा नही लगे और उज्ज्वल विचारो की धारा बहती रहे। इस प्रकार आप कम-से-कम अड़तालीस मिनट तो अवश्य ही अभ्यास करे।

भोजन तो तीर्थंकर भी करते है और साधारण मनुष्य भी करते है। अत जब आप भोजन करे तो उस समय आपके मन मे

किसी प्रकार का कुविचार नहीं आना चाहिए। शुद्ध और पवित्र भावना रहनी चाहिए। आप यह चिन्तन करें कि मैं अपनी आत्मा की निर्मलता प्राप्त करने के लिए भोजन कर रहा हूँ। यदि भोजन करने के दो-तीन घण्टे पहिले भी किसी के साथ झगड़ा हो गया हो, किसी की आत्मा को दुखाने से आपकी आत्मा में संकल्प-विकल्प उठ रहे हों तो उस समय भोजन करने की चेष्टा नहीं करें। उसको समाहित करने के बाद ही भोजन करना चाहिए।

भोजन करते हैं तो उससे रस बनता है और उस रस से अमिय बनता है, अमृत बनता है। उससे पाचन क्रिया ठीक होती है। मुंह का अमिय एक उत्तम तत्त्व है। उसमें कोई सम्मूर्च्छिम जीव पैदा नहीं होते हैं और न मवाद ही पैदा होती है। यदि यह नहीं बने तो जीवन नहीं रहे। सन्तों के लिए तो यहां तक संकेत है कि प्रथम तो किसी से कुछ अनुचित कहना ही नहीं चाहिए और यदि भूल से कुछ कह दिया हो तो मुंह में ग्रास लेने के पहिले ही क्षमायाचना कर लेनी चाहिए और कदाचित् ऐसा प्रसंग नहीं बने तो सायंकाल प्रतिक्रमण के समय तो उस पवित्रता को ले ही आना चाहिए। कदाचित् तब भी नहीं बन सके तो पक्खी के दिन तो ऐसा कर ही लेना चाहिए।

जैसे सन्तों के लिए कहा गया है, वैसे ही गृहस्थ-वर्ग को भी अमृत-रस का झरना बहाना है। उसके लिए भी प्रक्रिया है। श्रावक के बारह व्रत बतलाए हैं। उनमें से बारहवां व्रत क्या है? यह व्रत आपको जानना चाहिए। वह 'अतिथिसंविभागव्रत' है। गृहस्थ भोजन करने बैठे तो उस समय उसके मन में यह पवित्र भावना आए कि [illegible] भोजन [illegible] ही ग्रहण करता हूँ, क्या ही अच्छा हो कि [illegible] भी [illegible]। कोई उत्तम पात्र मिल जाय—संत [illegible] त्यागी [illegible] किसी [illegible] न [illegible] और [illegible] तो [illegible] भोजन [illegible]

कुछ भोजन उसे दे दू । यह भावना निभाई जाती है तो इससे आपके विचारों का असर शरीर पर पड़ेगा और भोजन की प्रक्रिया से जो रस बनेगा, उससे विचारों की शुद्धि होती चली जाएगी ।

यह प्रक्रिया अपने जीवन के साथ है । हर एक व्यक्ति इससे सम्बन्ध जोड़ सकता है । यदि आप इस प्रकार अपने जीवन मे ये बाते ग्रहण करेगे तो आपका जीवन मगलमय बनेगा । आप अपने जीवन को माजने के लिए, पवित्र रखने के लिए कोशिश करेगे तो आपका जीवन भी पवित्र बनते ही एक दिन विमलनाथ भगवान के समान अमृत का झरना बन सकेगा ।



बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला १०

# आत्मचिन्तन

दुःख दोहग दूरे टल्या रे, सुख संपदशुं भेट,
धींग धणी माथे किया रे, कौण गंजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्या वांछित काज ।

विमल प्रभु को जिस आत्मा ने समझा है, वह भव्यात्मा विमलनाथ के चरणों में अन्य वस्तु की याचना नहीं करती है। यदि वह कुछ भी याचना के स्वर में बोलती है तो उसका स्वर भौतिक स्तर से रहित ही होता है। वह कहती है, "भगवन्, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। स्वामी और सेवक के ये भाव औपचारिकता से—उपचार से किये गये हैं क्योंकि साधक के मन में कहीं स्वप्न में अहंकार की भावना जागृत नहीं हो जाए, इसलिए वह परमात्मा को समक्ष रख कर उसे स्वामी के रूप में पुकारता है और अपने आपको उसका सेवक समझ कर अपने जीवन की साधना करता जाता है।

जिसका आत्मा परमात्मा का उपासक आत्मा है, वह परमात्मा के चरणों में यही निवेदन करेगा, "भगवन्, मैं आपके चरणों की सेवा पा गया। आप आनन्दघन के रूप में हैं जिससे आपका आत्मिक [illegible] परिपूर्ण रूप में विकसित हो रहा है। आपके आनन्द-स्वरूप [illegible] है। उस आनन्द के सिवा कोई अन्य उसके प्रवेश [illegible] नहीं पा सकता। [illegible] का परिपूर्ण रूप आपने [illegible] मेरे जीवन [illegible]।

आत्मिक प्रदेश शास्त्रीय परिभाषा की दृष्टि से असख्य गिने जाते है, यद्यपि ये प्रदेश इस आत्मिक तत्त्व से कभी भी अलग नही हो सकते परन्तु बौद्धिक दृष्टि से प्रदेशो की सख्या बना कर निर्देश दिया गया है । ये असख्य प्रदेश अनादिकाल से इस ससार की मलिनता को लेकर चल रहे है, कर्म रूपी कीचड से लिप्त होकर ये अपने शुद्ध और पवित्र स्वरूप को धूमिल करके चल रहे है । सेवक उसी मलिनता को दूर हटाने के लिए ही भगवान की चरण-शरण चाहता है, यद्यपि वह सेवा देने-लेने सरीखी नही है ।

सेवक निवेदन करता है, "आपके आध्यात्मिक जीवन के दो चरण है—श्रुतधर्म रूप और चारित्रधर्म रूप। इन दोनो चरणो को मैं आपकी परम कृपादृष्टि से अपने इन असंख्य आत्मप्रदेशो में विधिवत् अपना लू । वे चरण यदि मेरे जीवन में उतर आयेगे—श्रुत और चारित्ररूप गुणो का विकास होने लगेगा तो उनके सहारे मेरा कर्म-कीचड धुलता रहेगा और आत्मा की निर्मलता तथा पवित्रता बढती हुई चली जाएगी। मैं इसी माग पर चलता हुआ आपके चरणो की सेवा की याचना कर रहा हूँ ।"

बधुओ, जिस भव्यात्मा ने इस चरण-सेवा का स्वरूप समझा है, वह अपने आत्म-स्वरूप को अवश्य पहचानेगी क्योकि उसके पहिचाने बिना वह चरण-सेवा-रूप, श्रुत और चारित्ररूप धर्म, उसके जानने के पेटे मे प्रवेश नही कर पाएगा। इस दिव्य स्वरूप को पाने के लिये जब आत्मा की भव्य तैयारी बनेगी तो वह विमलनाथ को अपने जीवन के अन्दर चरम सीमा के विमल गुण-रूप मे ही प्रकट करेगी। फिर सदा के लिए स्वामी और सेवक का भाव मिट जाएगा। फिर तो सेवक भी सेव्य बन जाएगा, भक्त भी भगवान बन जाएगा। भक्त और भगवान मे फिर अन्तर नही रहेगा । दोनो की तुल्यता, दिव्य-स्वरूप की दशा, जिस रूप मे इस आत्मा की बनेगी, वह आनदघन रूप में आत्मा के चरम स्वरूप को पा सकेगी ।

इस साधना के लिये संत और सती-वर्ग इस संसार के बीच विषयों का परित्याग करके आध्यात्मिक साधना मे तन्मयता के साथ रमने की कोशिश करते है। कहा तो आज के विचित्र संसार के लुभावने दृश्य और कहा साधना की दृष्टि से ये कठ-चरण! परन्तु जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की साधना मे रम जाता है, उसको इस जीवन मे रूक्षता का भान ही नही होता है। वह तो जीवन की स्नेहमयी स्निग्धता ही देखता है। हर घडी, हर पल, हर समय उसके जीवन मे इस आध्यात्मिक आनन्द का संचार होता रहेगा। वह इसमे डुबकी लगाता हुआ कभी भी बाहर भागने की कोशिश नही करेगा। उसका यह सम्पूर्ण जीवन परम सौम्य और परम आनन्दमय आध्यात्मिक स्वरूप बनेगा।

जिन साधकों ने आध्यात्मिक जीवन मे रमण करने के लिये भौतिक पदार्थों का त्याग तो अवश्य किया है, परन्तु विधि के साथ श्री भगवान ने जिस मार्ग का निर्देश किया है, उस मार्ग पर गमन करने का जो रास्ता [illegible] है जिनके जीवन का रास्ता डांवाडोल बन रहा है, वे इस साधना की पोशाक तो [illegible] तो अवश्य पहनते है, परन्तु [illegible] इस आध्यात्मिक मार्ग मे प्रवृत्त नही होने [illegible] वे आध्यात्मिकता का भान नही कर पाते। वे सोचते है कि [illegible] संसार के परित्याग के साथ आध्यात्मिक जीवन मे प्रवेश होता है, [illegible] प्रवेश तो किया परन्तु आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति तो उनको [illegible]

[illegible]

रहता है कि अमुक व्यक्ति कैसा है, अमुक परिवार मे कौन है, अमुक काम उसे करना है, अमुक धर्म का कार्य भी हाथ मे लेना है या अमुक धार्मिक सस्था के लिये चंदा-चिट्ठा करना है तो वह सावना के सही मार्ग पर नही है। इस प्रकार की वाक्यावली के साथ जिस साधक का जीवन इन बाहरी पदार्थों मे परिभ्रमण कर रहा है और इन्ही के पीछे वह अपनी जयश्री देख रहा है, अपनी यश-पताका की कामना कर रहा है और सोच रहा है कि इन कामो से समाज की ओर से मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए तो ऐसा चितन हितावह नही है। वह सोचता है कि ओहो, महाराज ने इतना परोपकार का काम करा दिया, यह धन्यवाद समाज की ओर से मुझे मिल गया और जन-मानस की ओर से इस प्रकार का वातावरण प्राप्त हो गया तो मेरी साधुता की साधना पूरी हो गई। इस प्रकार ऊपर-ऊपर ही तैरने वाले व्यक्ति, ऊपर-ऊपर से ही बर्तन को माजने वाले व्यक्ति, भले ही साधना में चले परतु वे अन्दर की स्निग्धता को प्राप्त नही कर सकते।

इसलिए ज्ञानीजनो का कहना है कि ये कार्य तो जो गृहस्थ व्यक्ति है, वे भी सपादित कर लेगे। इतनी सूझ-बूझ तो उनमे भी है। वे अपने घर, समाज और राष्ट्र का कार्य करते हुए भी इन कार्यो को सहज भाव से निपटा सकेंगे। और खास तौर से यह कार्य उन्ही के जिम्मे का है क्योकि वे अन्य-अन्य कार्यों में इतने लीन रहते है कि उनको आध्यात्मिक-दर्शन का प्रसग ही नही आता है। ये कार्य उनके लिए रसप्रद है। यदि तुम भी उन्ही के कार्यों को लेकर चलोगे तो वे सोचेंगे कि चलो हमारी जिम्मेवारी हटी। परन्तु तुम अपनी जिम्मेवारी को छोड कर उधर प्रवेश कर रहे हो और आध्यात्मिक रस का पान नही कर रहे हो तो यह बडी विडम्बना है। भले ही तुम ऐसी साधना मे चलते रहो परन्तु अपने अन्दर की अनुभूति और आनन्द का आस्वादन ठीक तरह से नही कर पाओगे।

यदि विमलनाथ के स्वरूप को पाना है तो उसको अन्तर में

प्रतिदिन ... का अभ्यास जारी रखना चाहिये। इसमें कठिनाइयाँ बहुत आती हैं। अनन्त काल के विषय और व्यापार इस आत्मा के चारों ओर ऐसा जाल बना रहे हैं और बढ़ने नहीं देते हैं। परन्तु जब निरन्तर सावधान होकर चलो तो उनको पछाड़ कर अपने निर्मल स्वरूप की ओर बढ़ सकते हो। पूर्ण साधक को तो, जो संसार का [illegible] त्याग कर साधु की पोशाक में चल रहा है, ऐसा करना ही चाहिए।

इनके साथ ही साथ सबों के जो छोटे भ्राता श्रावक हैं और सतियों की छोटी बहिन श्राविकाएँ हैं, उन्हें भी अपने पथ से विचलित नहीं होना चाहिये। जितने धार्मिक कार्य हैं, उनको तन्मयता से करने की कोशिश करनी है। उनसे यदि कहा जाए कि चौबीस घण्टों में से एक घण्टे के लिए तुम इस आध्यात्मिक-रस को लेने का अभ्यास करो तो वे सहसा बोल उठते हैं कि महाराज क्या किया जाए—हमारी दैनिक दिनचर्या बड़ी विचित्र बन गई है। जब हम अपने चारों ओर देखते हैं, सामाजिक व्यवहार में कुरीतियों को देखते हैं तो दिल रोने लगता है। किस प्रकार पाप की कालिमा हमारे ऊपर छाई हुई है! ऐसी स्थिति में हम इस विलक्षण परमात्मा की साधना एक घण्टे के लिए भी कैसे करें?

मैं स्वीकार किया जाता है कि [illegible] इस प्रकार के [illegible] है तो [illegible] । [illegible] होने की कोशिश करता है, वह [illegible]

[illegible]

रहता है कि अमुक व्यक्ति कैसा है, अमुक परिवार मे कौन है, अमुक काम उसे करना है, अमुक धर्म का कार्य भी हाथ मे लेना है या अमुक धार्मिक सस्था के लिये चंदा-चिट्ठा करना है तो वह साधना के सही मार्ग पर नही है। इस प्रकार की वाक्यावली के साथ जिस साधक का जीवन इन बाहरी पदार्थों मे परिभ्रमण कर रहा है और इन्ही के पीछे वह अपनी जयश्री देख रहा है, अपनी यश-पताका की कामना कर रहा है और सोच रहा है कि इन कामो से समाज की ओर से मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए तो ऐसा चितन हितावह नही है। वह सोचता है कि ओहो, महाराज ने इतना परोपकार का काम करा दिया, यह धन्यवाद समाज की ओर से मुझे मिल गया और जन-मानस की ओर से इस प्रकार का वातावरण प्राप्त हो गया तो मेरी साधुता की साधना पूरी हो गई। इस प्रकार ऊपर-ऊपर ही तैरने वाले व्यक्ति, ऊपर-ऊपर से ही वर्तन को माजने वाले व्यक्ति, भले ही साधना में चले परतु वे अन्दर की स्निग्धता को प्राप्त नही कर सकते।

इसलिए ज्ञानीजनो का कहना है कि ये कार्य तो जो गृहस्थ व्यक्ति है, वे भी सपादित कर लेगे। इतनी सूझ-बूझ तो उनमें भी है। वे अपने घर, समाज और राष्ट्र का कार्य करते हुए भी इन कार्यों को सहज भाव से निपटा सकेगे। और खास तौर से यह कार्य उन्ही के जिम्मे का है क्योकि वे अन्य-अन्य कार्यो मे इतने लीन रहते है कि उनको आध्यात्मिक-दर्शन का प्रसग ही नही आता है। ये कार्य उनके लिए रसप्रद है। यदि तुम भी उन्ही के कार्यो को लेकर चलोगे तो वे सोचेगे कि चलो हमारी जिम्मेवारी हटी। परन्तु तुम अपनी जिम्मेवारी को छोड कर उधर प्रवेश कर रहे हो और आध्यात्मिक रस का पान नही कर रहे हो तो यह बडी विडम्बना है। भले ही तुम ऐसी साधना मे चलते रहो परन्तु अपने अन्दर की अनुभूति और आनन्द का आस्वादन ठीक तरह से नही कर पाओगे।

यदि विमलनाथ के स्वरूप को पाना है तो उसको अन्तर में

प्रवेश कराने का अभ्यास चालू रखना चाहिये । इसमे कठिनाइया बहुत आती हैं । अनन्त काल के विपय और कपाय इस आत्मा के चारो ओर घेरा डाल कर खडे हुए है और बढने नही देते है । परन्तु तुम निरन्तर सावधान होकर चलो तो उनको पछाड कर अपने निर्मल स्वरूप की ओर बढ सकते हो । पूर्ण साधक को तो, जो ससार का वैभव त्याग कर साधु की पौशाक मे चल रहा है, ऐसा करना ही चाहिए ।

इसके साथ ही साथ सतो के जो छोटे भ्राता श्रावक है और सतियो की छोटी बहिनें श्राविकाये है, उन्हे भी अपने पथ से विचलित नही होना चाहिये । जितने धार्मिक कार्य हैं, उनको तन्मयता से चलाने की कोशिश करनी है । उनको कभी कहा जाए कि चौबीस घण्टो मे से एक घटे के लिए तुम इस आध्यात्मिक-रस को लेने का अभ्यास करो तो वे सहसा बोल उठते हैं कि महाराज क्या किया जाए—हमारी दैनिक दिनचर्या बडी विचित्र ढग की है । जब हम अपने कृत्यो को देखते हैं, सासारिक व्यवहार मे कुरीतियो को देखते हैं तो दिल रोने लगता है । किस प्रकार पाप की कालिमा हमारे ऊपर छाई हुई है ! ऐसी स्थिति में हम उन विमलनाथ परमात्मा की साधना एक घण्टे के लिए भी कैसे करे ?

मैं सुझाव दिया करता हूँ कि आप इस प्रकार के पश्चात्ताप मे जल रहे है तो यह भी शुभ-भावना है । जो विमलनाथ के स्वरूप को देखता है, उसे अपनी मलिन दशा को देख कर दु ख होता है । जो कीचड-रहित निर्मल जीवन देखने की कोशिश करता है, वह कीचड से भरा हुआ हो तो अपने आपमे ग्लानि का अनुभव करता ही है । वह यह भी सोचता है कि इस गदे पानी से लिप्त होकर भी क्या मैं गदगी और कीचड से रहित पुरुप का स्मरण करूँ ? इसमें मुझे शर्म आती है ।

मैं तो कहूगा कि यह शर्म सरीखी कोई बात नही है । इस

शुभ लक्षण के बीच मे यदि आप उनका स्मरण करेगे तो आपके अदर जागृति पैदा होगी । आप सोचेगे कि जिन आत्माओ ने इस ससार की पाप वासनाओ से ऊचा उठ कर अपने आपको परमात्मा के स्वरूप मे प्राप्त किया तो उनका अनुसरण करके मैं भी वैसा ही क्यो नही वन सकता हू, मै क्यो पिछड रहा हू ? वह शक्ति मुझमे भी है । मै इन व्यवहारो और परिस्थितियो को परिवर्तित कर सकता हूँ । इन परिस्थितियो को मैने स्वय अपने सिर पर लिया है, कोई दूसरा इन्हे मेरे ऊपर लादने के लिए नही आया है । ये स्वय मेरे द्वारा पकडी गई है । यदि मैं इस पकड को छोड देता हूँ तो मेरा जीवन उस पवित्र सत् स्वरूप मे पहुच सकता है ।

दुनिया के अन्दर चारो तरफ काटे विछे हुए है, तीक्ष्ण शूलें दीख रही है । व्यक्ति सोचता है कि मैं कैसे चलू ? ये शूले मेरे पैरो मे चुभ जायेगी । परन्तु यदि वह विवेक के साथ चितन करे तो उन शूलो से डरने की स्थिति नही रहेगी । यदि वह इस कल्पना से चले कि मैं इन सब शूलो को साफ करके बिल्कुल साफ रास्ते पर चलू, तब वह न तो उन शूलो को साफ कर सकेगा और न चल ही सकेगा । कहावत है--'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी ।'

यह तो कठिन मार्ग है । यदि तुम इस पर चलना चाहते हो तो अपने पैरो मे पादत्राणिका ग्रहण कर लो । उसे आप सीधे शब्दो मे गृहस्थ-अवस्था मे जूते या पगरखी बोल देते है । जिसने जूतिया पहिन रखी है तो फिर दुनिया के काटे उसका क्या बिगाड करेंगे ? वह तो बेधड़क चलेगा । उसको कोई भी कष्ट होने वाला नही है ।

वैसे ही यदि आप अपने जीवन को निर्मल बनाना चाहते है तो दुनिया की मलिनता के काटो को छू-छूकर अपने आपको दुखी क्यो बना रहे है ? आप क्यो नही अपने जीवन मे ऐसे आवरण लगा लेते है, जिससे कि सारी की सारी दुनिया मलिन काटो से भरी रहे

परन्तु आपका जीवन तो अबाध गति से इस प्रकार चले कि कोई आपका कुछ बिगाड ही नही कर सके। युद्ध के मैदान मे जाने वाला सेनानी अपने शरीर पर कवच पहिन लेता है तो फिर कितने ही तीक्ष्ण बाण क्यो न आये परन्तु उसे चोट नही लगती। वैसे ही यदि आप अपने जीवन मे नैतिकता का कवच पहिन लेते है और सामाजिक कुरीतियो को मिटाने की दृष्टि से फिजूल खर्च को मिटा देते हैं तो इस दुनिया की मलिनता और काटे आपका कुछ भी बिगाड नही कर सकेंगे।

आप स्वय कमजोर बने हुए हैं और हैरानी का अनुभव कर रहे हैं तो फिर इस कमजोरी को दूर करने के लिए किसी योग्य चिकित्सक से दवा लेने की जरूरत है। जैसे किसी योग्य डॉक्टर के पास पहुच कर आप पौष्टिक दवा लेते हैं और अपनी शारीरिक कमजोरी को दूर करते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक कमजोरी को दूर करने के लिए आप आध्यात्मिक-चिकित्सक के पास पहुँच कर आध्यात्मिक पुष्टि हेतु खुराक लीजिये और अपने बिगडे हुए व्यवहारो को सुधारने की कोशिश कीजिये। परन्तु जब वह दवा ली जाती है तो उसको लेने का विधि-विधान भी सोचना पडेगा कि उसे किस प्रकार लिया जाये ? साथ ही दवा लेने और पथ्य के बारे मे सोचने के लिये समय की भी आवश्यकता है।

यदि जीवन की मलिनता को मिटाने के लिये दवा लेना है तो एक घण्टे का समय तो निकालना ही होगा। एकांत में बैठ कर आप अपने आध्यात्मिक जीवन की तमाम बुराइयो को देखने की कोशिश करें। यदि आप उनको देख लेंगे तो एक दिन वे बुराइयां आपसे किनारा कर लेगी। फिर वे आपके जीवन की शक्ति को लूट नही पायेगी। आप बुराइयो को देख नहीं पा रहे हैं, तभी वे आप पर आक्रमण कर रही है। आप बुराइयों को अच्छाइयां समझ रहे है। इसीलिये वे आप पर अधिक से अधिक आक्रमण कर रही हैं।

अत यदि आप बुराइयो को देखने की कला सीख लेगे तो फिर वे ऐसा नही कर सकेगी ।

मान लीजिये कि एक गृहस्थ अपने स्थान पर बैठा हुआ है और उसके घर मे कोई चोर प्रवेश कर रहा है । यदि मालिक उस को चोर न समझ कर साहूकार समझ रहा है तो वह बेधडक घर मे प्रवेश करेगा । परन्तु यदि घर का मालिक उस चोर को चोर समझ लेता है और कहता है कि तुम आ तो रहे हो परन्तु मै समझता हूँ कि तुम चोर हो । तुम मेरे घर मे चोरी करने को आए हो तो करो चोरी—मैं बैठा हूं । ऐसी हालत में क्या वह चोर आपके घर में चोरी कर सकेगा ? चोर समझेगा है कि मुझे चोर मान लिया गया है तो अब मै यहा चोरी कैसे करू ? वह भाग खड़ा होगा ।

जैसे उपर्युक्त परिस्थिति मे घर का मालिक चोर को चोर समझ लेता है और उसे सम्बोधन करके अपने घर की सम्पत्ति सुरक्षित रख लेता है, इसी प्रकार इस घर का मालिक अर्थात् आत्मा भी यदि अपनी बुरी आदतो को लुटेरा समझ ले और उन्हे संबोधन करे कि देखो, मैं तुम्हे पहिचान गया हूं, तुम मेरी अमुक-अमुक आत्मिक सम्पत्ति को चुराने आए हो । मै बैठा हू । अब तुम चोरी कैसे कर सकते हो ? इस प्रकार की सावधानी यदि इस आत्मा में आ जाए तो उसके पास ये बुराइया कभी नही रह सकेगी ।

कठिनाई यह है कि इन्सान इन बुराइयो को पहिचान ही नही पा रहा है और व्यर्थ ही इनसे भय खा रहा है । उसके पास इन्हे पहिचानने का समय ही नही है । न तो वह बुराइयो को देखने का अभ्यास करता है और न उनकी जानकारी ही प्राप्त करता है । इस दृष्टि से दिन-प्रतिदिन बुराइया बढती जा रही है । अत मे वह रोता रहे, चिल्लाता रहे परन्तु इससे क्या होगा ? वे तो और भी अधिक आक्रमण करेगी । वे कमजोर व्यक्ति को अधिक दबायेगी और उसकी आध्यात्मिक सम्पत्ति को लूट कर ले जायेंगी ।

आप यदि सावधान होकर चिंतन करना चाहते है तो आध्यात्मिक चिंतन के लिये एक घण्टे का समय निकालिये। महाराज ने कह दिया, इस रूप मे नही परन्तु नियमित रूप से कडिया जोडिये और सोचिये कि एक घण्टे भर का क्या कार्यक्रम रखना है? कौनसी वृत्तियो को देखना है? फिर चौबीस घण्टो की दिनचर्या देखना सीखे। इस प्रकार आप चौबीस घण्टो का भावी कार्यक्रम बना सकते हैं। यदि आप मन की एकाग्रता से घण्टे भर की सामायिक कर पाते हैं तो कालिमा घुल जाएगी। परन्तु इस प्रकार आप करेंगे, तभी यह बन सकेगा। कपडो के मैल को देख-देख कर रोते रहे तो ऐसा करने से क्या होगा? मैले कपडो को धोने के लिए समय तो चाहिए या नही? वे कितने समय मे धुल सकते है? चौबीस घण्टे का मैला कपडा एक घण्टे मे धुल सकता है। एक घण्टे की खुराक लेते है तो उसका रस चौबीस घण्टे चलता है। आप चौबीस घण्टो मे एक घण्टे का समय निकालिये और चिंतन कीजिए।

आप कह सकते हैं, "महाराज, यदि आज कपडा धोते है तो कल वह फिर मलिन हो जाता है।" परन्तु आप इससे क्यो घबराते है? यदि आप धोते रहेंगे तो गाढा मैल नही लगेगा और धोना छोड देंगे तो ततु-ततु मे मलिनता प्रवेश कर जाएगी। आप दूकानदार है और रोजाना धुले कपडे पहिनते हैं परन्तु सध्या तक वे मैले हो जाते है। दूसरे रोज फिर धुले कपडे पहिनते हैं और वे फिर मैले हो जाते है तो क्या आप उन्हे धोना छोड देते है? आप यह सोच कर तो नही बैठते कि मैं इन्हे अभी धो रहा हू और ये फिर मैले हो जायेंगे तो इन्हे क्यो धोऊ? जब कपडो के लिए आप ऐसा नही सोचते है और उन्हे बारम्बार धोते रहते है तो फिर अपनी आत्मा को धोने के लिये चिंतन क्यो नही करते?

यदि आप दृढ विश्वास के साथ आध्यात्मिक साधना मे लगते है तो अवश्य ही इस आनन्द की अनुभूति को पा सकते हैं। आप

हीनता और कमजोरी कभी न लाइये । जो मजबूती लेकर चलते हैं, उनके ही गुण गाये जाते है ।



बीकानेर—
सं० २०३०, श्रावण शुक्ला ११

# क्रियाशुद्धि

धार तलवारनी सोहली, दोहली, चउदमा जिन तणी चरणसेवा ।

परमात्मा की चरण-सेवा का विषय चल रहा है । प्रभु की सेवा तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है । इसी कारण आतरिक ज्ञान के स्वरूप की उपलब्धि नही हो रही है । परन्तु जिस आत्मा को अपने असली स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, उसको प्रभु की सेवा उतनी कठिन ज्ञात नही होती, जितनी कि अज्ञानी को होती है । अज्ञानी मनुष्य को सेवा का कार्य सही नही दिखलाई देता । यहा 'अज्ञान' का तात्पर्य कम ज्ञान से नही है । ज्ञान किसी को अधिक हो या कम हो, कोई अधिक या कम ज्ञान की दृष्टि से अज्ञानी नही कहला सकता । परन्तु जिसका ज्ञान अविकसित है, जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी न समझ कर उसमे जो विपरीत श्रद्धान करता है, उसको यहा अज्ञानी कहा गया है ।

ससार के पदार्थ नाशमान है । इन नाशमान पदार्थों को काम मे लिया जा सकता है परन्तु ये ही आत्मा के लिए सर्वस्व नही बनते है । आत्मा के लिए तो चरम लक्ष्य प्रभु के तुल्य बनने की प्रबल जिज्ञासा और तदनुरूप श्रद्धान है । ऐसा व्यक्ति चाहे थोडा ज्ञानी हो या अधिक परन्तु वह प्रभु की सेवा के मार्ग को ग्रहण करने वाला बन सकता है । जिसको इससे विपरीत ज्ञान है, जो आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विषय को समझता ही नही है अथवा जो समझ करके झुठलाता है, अपनी कमजोरियो को छिपा कर परलोक का आलाप करता है, आत्मा की शक्ति को विस्मरण करके भौतिक तत्त्वो

का प्रतिपादन करता है, संसार की मोह-माया ही जिसके जीवन का लक्ष्य है, इस जीवन के अन्दर कुछ खा लिया, पी लिया, पहिन लिया मौज-शौक कर लिया, यही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त कोई तत्त्व नही है, जो इस प्रकार का श्रद्धान रख कर चलने वाला है तो चाहे वह व्यक्ति अधिक ज्ञानी भी क्यो न हो, चाहे वह सारी दुनिया का विज्ञान रखता हो, भौतिक विज्ञान की दृष्टि से प्रकाण्ड विद्वान भी क्यो न हो परन्तु शास्त्रकार कहते है कि जो इस प्रकार एकाकी ज्ञान के साथ है और अपने निज स्वरूप को भूल कर ससार के विज्ञान को ही सब कुछ मानता है, वह अज्ञानी है ।

ऐसा अज्ञानी व्यक्ति प्रभु की सेवा नही कर सकता । उसका जीवन तो संसार की गलियो मे भटकता रहता है । वह इधर-उधर की नाशमान गंदगी को ही पसद करता है । ऐसे व्यक्ति को प्रभु की सेवा का अवसर नही मिलता है और कदाचित् वह अपनी इस उपलब्धि के लिये यह समझ ले कि मै प्रभु की भक्ति करूगा, भजन करूगा तो इससे मुझे भौतिक सुख मिलेगा परन्तु लक्ष्य तो उसका भौतिकता का है और उसकी पुष्टि के लिये यदि वह आत्मा और परमात्मा का नाम भी लेता है और उस परमात्मा की सेवा करने के बहाने से कुछ क्रियाये भी सम्बन्धित करता है तो वे क्रियायें उसे वास्तविक सुख दिलाने वाली नही बनती है । ऐसी क्रियाये बताने वाले बहुतेरे मिल जाते है ।

एक कहे सेविये विविध किरिया करी, फल अनेकात लोचन न देखे ।

ऐसे व्यक्तियो को कोई कहता है कि तुम परमात्मा की सेवा करो, विविध क्रियाए करो । यहा विविध क्रियाओं मे वे क्रियाए भी शामिल है, जो धार्मिक क्रिया के नाम से की जाती है परन्तु लक्ष्य शून्य बन कर की जाती है । जो परम सीमा के आत्मिक स्वरूप को भूल कर विविध क्रियाये करता है तो यहा उसके फल की अनेकातता है । अनेकात का तात्पर्य यह है कि ये क्रियाये उसके फल को सिद्ध

करने वाली नही बनती है परन्तु उस लक्ष्य के विपरीत ससार को सिद्ध करने वाली बनती हैं । उन अनेकान्त फल वाली क्रियाओ से आत्मा चार-गति ससार मे भटकती है और अनादिकाल से वह ऐसे ही कार्य करती आई है ।

जीवन है तो क्रिया है। जीवन की क्रियाओ का प्रयोग यदि वास्तविक शुद्ध आत्मिक लक्ष्य की ओर है तो उनका फल अनेकान्त नही होता—एकान्त होता है अर्थात् वह अवश्यमेव आत्मा की सिद्धि को दिलाने वाला और प्रभु की सेवा के चरम सिरे पर पहुँचाने वाला होता है। परन्तु जिसका लक्ष्य विपरीत है, श्रद्धान सही नही है, वह व्यक्ति कितनी भी कुछ क्रियाये करे, चाहे वह ससार के अन्दर परोपकार के नाम से क्रिया करे, चाहे किसी अन्य सेवा की दृष्टि से काम करे अथवा धार्मिक क्षेत्र की पोशाक लेकर के कठिन से कठिन तप भी करे परन्तु वह तप भी सम्यक्-दृष्टि आत्मा के तप के सोलहवे हिस्से को भी नही छूता है। कहा भी है कि—

मासे-मासे उ जो बालो, कुसग्गेण तु भु जए ।
न सो सुयक्खायधम्मस्स, कल अग्घइ सोलसिं ।।

(उत्तराध्ययन ९/४४)

कोई मास-मास खमण की तपस्या करे, एक महीने भर का तप करे यानि सिर्फ गर्म पानी के आधार पर तीस दिन तक रहे और इकतीसवे दिन भोजन की दृष्टि से स्वल्प भोजन, इतना स्वल्प भोजन कि एक डाभ के तृण के ऊपर जितना अन्न आए, उतना अन्न वह ग्रहण करे और पुन तीस दिन की गर्म पानी के आधार पर तपस्या पचख ले और फिर तीस दिन समाप्त होने पर उतना ही अन्न पुन ग्रहण करके तपस्या करे, ऐसे महीने-महीने भर की तपस्या करने वाला व्यक्ति दुनिया की दृष्टि मे महान् तपस्वी कहला सकता है, लोग उससे प्रभावित हो सकते है परन्तु प्रभावित वे ही होते हैं, जिन्हे सही मार्ग का ज्ञान नही है। जिसको प्रभु की सेवा का मर्म ज्ञात है, जिसका

प्रभु की आज्ञा को महत्त्व देने का संकल्प है, वह व्यक्ति सबसे पहिले यही देखता है कि यह महीने-महीने भर की घोर तपस्या करने वाला तपस्वी प्रभु की आराधना कर रहा है या प्रभु की आज्ञा से विपरीत चल रहा है।

प्रभु ने साधक के लिए कहा है कि तू अपनी साधना के क्षेत्र में एकाकी मत रह, एक दूसरे की साक्षी मे रह और शासन के अनुकूल चतुर्विध संघ के बीच मे रह करके साधना कर। अनुशासन के साथ शास्त्रीय मर्यादाओ का कल्प लेकर यदि तप किया जाता है तो वह तप प्रभु की आज्ञा रूपी सेवा का है। ऐसा व्यक्ति चाहे महीने-महीने की तपस्या न कर सके और कभी-कभी उपवास करता हो परन्तु प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके अनुशासनबद्ध आध्यात्मिक साधना मे आत्मसिद्धि मे लगा हुआ है तो उस व्यक्ति के लिए फल की अवस्था है, प्रभु के चरण उसको मिलते है। जो अनुशासनहीन है, प्रभु की आज्ञा के विपरीत एकाकी रह कर अथवा सबके साथ रह कर प्रभु की आज्ञा का अनुसरण नही करता है और जिसका लक्ष्य इस आत्मा की चरम सिद्धि का नही है तो उस मास-मास खमण की तपस्या करने वाले की स्थिति प्रभु के आज्ञानुवर्ती के मुकाबले मे सोलहवें हिस्से के बराबर भी नही है। शास्त्रकारो ने ऐसे तप को 'अज्ञान तप' कहा है। वह अनेकान्त फल वाला है। इससे चार गति की वृद्धि होती है—

फल अनेकात किरिया करी बापडा, रडवडे चार गति माहे लेखे।

चौदहवे जिन की जो सेवा है, वह कितनी कठिन है ! इसे इस रूप में ले सकते है कि शरीर को कृश बनाना, एक डठल की तरह सुखा देना, इतना त्याग होने पर भी सही ज्ञान और सही श्रद्धा तथा वीतराग आज्ञा का पालन नही होने से ऐसा तप संसार की गति को बढाने वाला बन जाता है। वैसे ही चाहे कितनी भी लक्ष्यहीन विद्वत्ता क्यों न हो, आत्मशुद्धि के परम लक्ष्य की साधना के बिना

चाहे दुनिया भर का ज्ञान और विज्ञान एक तरफ हो तो भी उस प्रभु की सेवा के लिये वह सहायक नही बन सकता। इसके विपरीत ज्ञान-विज्ञान भले ही अधिक न हो परन्तु प्रभु की आज्ञा मे अटूट श्रद्धा हो—'आणाय धम्मो' प्रभु की आज्ञा ही धर्म है, वही प्रभु के चरण है, वही उनकी सेवा है, इस दृढ श्रद्धान के साथ वह कुछ थोडा-थोडा ज्ञान रखता हो, ज्ञान की दृष्टि से उसको स्वल्प-ज्ञानी कहेगे परन्तु वह अज्ञानी नही है, वह ज्ञानी है क्योकि वह प्रभु की आज्ञा की आराधना करने वाला है। वह प्रभु की सेवा को समझ कर पुरुषार्थ करेगा तो उसका ज्ञान बढ जाएगा। ऐसे व्यक्ति जितनी क्रियाये करते है और उनकी क्रियाओ मे विवेक और तन्मय स्थिति की साधना है तो वे सब उस प्रभु की परम सेवा को दिलाने वाली हैं।

कभी-कभी इस विषय की पुष्टि करने के लिये सत लोग कहा करते है कि किसी समय एक भयकर डाकू पकडा जाकर फासी के तख्ते पर पहुँच गया। उस वक्त उसकी मृत्यु की तैयारी थी परन्तु उसे जोर की प्यास लगी। वह अज्ञानी था। वह अपने कुकृत्य का फल भोग रहा था। इस अवस्था मे भी उसे परमात्मा और आत्मा का ध्यान नही था। उसका दिल तो पानी मे लगा हुआ था। वह यह भी नही सोच पा रहा था कि यदि पानी पी लिया तो भी इस जीवन को टिका नही सकूगा। इसकी अपेक्षा तो मैं परमात्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान करू, चितन करूं। इसका भी उसको खयाल नही था। वह दर्शको के सामने इशारा कर रहा था कि कोई नजदीक आकर उसे पानी पिलाने की कोशिश करे। दर्शक दूर से सब कुछ देख रहे थे। वे खडे-खडे सोच रहे थे कि उसके नजदीक जाकर यदि कुछ भी खाना पीना पेश करेगे तो सरकार हमको भी अपराधी मानेगी। फिर कही हमको भी सजा न भोगनी पडे। अत उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

उस समय प्रभु की आज्ञा का मर्म समझने वाला भक्त जिन-दास सोचने लगा कि इस डाकू की आत्मा इस वक्त छटपटा रही है

इसने इतना भयकर जुल्म किया कि छोटी अवस्था मे ही इसको फासी के तख्ते पर जाना पड रहा है । सभव है, इसके अगले जीवन का आयुष्य नही बधा हो और इस वक्त आयुष्य-बध का अवसर हो । यदि मेरे निमित्त से इसकी जिदगी सुधर जाए तो मेरे मन-वचन-काया के शुभ योग और शुभ क्रियाये मेरे लिए हितकर होंगे।

भक्त जिनदास सब भयों से मुक्त होकर मृत्यु के मुह मे पडे हुए उस व्यक्ति के समीप पहुचा और बोला—"भाई, क्या कहते हो ?" उससे बोला नही जा रहा था । उसने इशारा किया कि पानी । जिनदास ने कहा, "मै तुम्हे अभी पानी पिलाता हू ।"

जिसके मन, मस्तिष्क और तन मे प्रभु की आज्ञा का श्रेष्ठतम प्रवेश हो, वह कष्ट-पीडित आत्मा को देख कर स्वय दु खित होता है । इसीलिये ऐसी सम्यक्-दृष्टि आत्मा का लक्षण वतलाया है-सम, सवेग निर्वेध, अनुकम्पा और आस्था । अनुकम्पा करना, आत्मिक लक्ष्य के बिना नही बन सकता । इस अनुकम्पा से वह उसको बचा सकेगा या नही, यह प्रश्न अलग है। वह ६चे या नही परन्तु स्वय की आत्मा को प्रभु की आज्ञा में रखने का सुन्दर मौका मिल रहा है । ऐसे समय में ही उसका परीक्षण होता है ।

भक्त जिनदास उस प्यासे डाकू की तिलमिलाहट को देख कर मधुर स्वर मे कहने लगा, "भाई घबरा मत । मै तुझको पानी पिलाता हूँ । तूने देर से इशारा किया । पानी लाने में मुझको विलम्ब हो सकता है । परन्तु तू अपने विचारो मे कालुष्य ला रहा है, यह तेरे जीवन के लिये घातक है । अत. मै पानी लेकर आऊ, तब तक तेरे विचारो मे शुभ भावनाओं का सचार रहना चाहिये ।"

जब ऐसे मधुर स्वर मे सम्बोधन किया गया तो उस भयकर पापी की भावना भी उस भक्त के प्रति श्रद्धान्वित हो गई । वह मृत्यु के मुंह मे जाते हुए भी सोचने लगा कि यह अत्यन्त दयालु पुरुष मुझ जैसे पापी से भी घृणा न करके मुझको शाति देने का प्रयत्न कर

रहा है। वस्तुतः यह ज्ञाना है। इसके एक-एक वचन पर मुझको विश्वास होना चाहिये।

इस दृढ श्रद्धान के साथ वह डाकू मन ही मन सोचने लगा कि मै क्या शुभ भावना लाऊं ? मैं क्या सोचू ? उस भक्त ने कहा है कि मैं आऊ, तब तक तू परमात्मा का नाम ले। मैं तुझे ऐसा नाम बतला रहा हू, जो व्यक्ति विशेष का नाम नही है, गुण-निष्पन्न नाम है-'णमो अरिहताणम्'। जिन्होने आतरिक शत्रु काम-क्रोधादिक नष्ट कर दिये और चरम सीमा के भगवान बने, ऐसे परम तत्त्व को तेरा नमस्कार हो, उसी मे तेरा ध्यान हो। उसने इसी आदिपद की स्थिति से चार पद और बतलाये और कहा कि मैं आऊ तब तक इनका रटन जारी रहे। इस बात का पूरा ध्यान रखना।

भक्त जिनदास पानी लेने को गया। इधर मृत्यु के मुह मे जाने वाले डाकू की इतनी प्रबल भावना बन गई कि सेठ जिनदास ने जो कुछ कहा, वह तद्वत् है। परन्तु वह 'णमो अरिहताणम्' तो भूल गया और इस प्रकार रटने लगा-

आणु ताणु कुछ नही जाणू। सेठ वचन परमाणू॥

"मैं कुछ नही जानता हूँ परन्तु सेठ के वचन मेरे लिये प्रमाण है।" इस प्रकार विश्वास रख कर वह भयकर डाकू अन्तिम समय मे पवित्र भावना से सद्प्रवृत्ति का आयुष्य बाधता है, अपनी आत्मा को परमात्मा के अन्तर्पटे मे डाल देता है और उच्च गोत्र प्राप्त करता है।

बधुओ! ज्ञान की एक दृष्टि से चाहे एक मत्र का भी ज्ञान नही रहे। कभी-कभी लोग ऐसे व्यक्ति को अज्ञानी कह देते हैं। आजकल के भाई तप की साधना करते हैं, सामायिक करते है। उन भाइयो को भी कुछ लोग कोसने लग जाते है कि तुम अज्ञानी हो। ऐसा नही करते हो, वैसा नही करते हो। यदि सहसा इस प्रकार के किसी के वाक्य निकलते है तो वह भी प्रभु की आज्ञा के विपरीत है। वे अज्ञानी नही है।

उन्हे विशेष ज्ञान नहीं, ऐसा कह सकते है। परन्तु उनका श्रद्धान तो प्रभु की आज्ञा में है। वे सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर दृढ श्रद्धान कर के चल रहे है तो वे तप कर रहे है, शुद्धक्रिया कर रहे है। वे क्रियाये उनको ससार मे भटकाने वाली नही बन सकती क्योकि वे आध्यात्मिक-साधना के साथ चल रहे है। यह बात दूसरी है कि किसी मे विवेक कम है और किसी मे अधिक। विवेक कम है या ज्यादा है, यह ज्ञान की मात्रा पर निर्भर है। परन्तु जो सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखता है, वह सुज्ञानी है और जो क्रिया है, वह उसकी सोलहवी कला है। जो मास-मास खमण की तपस्या कर रहा है, वह भी उसको नही पहुंच सकता।

इससे यह सहज स्पष्ट हो सकता है कि इन्सान को अपनी ज्ञान-शक्ति बढानी चाहिये। परन्तु शुद्ध लक्ष्य के साथ उस परम स्वरूप को पाने की दृष्टि से और उसके अनुरूप क्रियाओ का ध्यान रखता हुआ यदि कोई सेवा का कार्य अपनाता है तो वह प्रभु की सेवा के अन्तर्पेटे मे है।

जहा परस्पर की सेवा का विचार है, उसकी दृष्टि से भोजन लेना-देना भी एक सेवा है। उसमे भी यदि शास्त्रीय-दृष्टि की स्थिति है, उसकी स्थिति से यदि भोजन का आदान-प्रदान है तो वह भी उस आज्ञा के अन्तर्पेटे मे आ सकता है।

इधर गृहस्थ-वर्ग की आहार की प्रक्रिया है। वह भी आहार करता है, भोजन करता है। और भोजन करता हुआ वह अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा की साधना मे बैठ कर चिन्तन करता है। परन्तु उसके चिन्तन मे उसके आहार की एषणीय स्थिति क्या है? आहार की गवेषणा और एषणा, ये शब्द तो साधु के लिए मुख्य रूप से प्रचलित है, गृहस्थ के लिए नही है। परन्तु इसके ही पर्यायवाची शब्द है—नैतिकता का ग्रहण। जो गृहस्थ नैतिकता को साथ रखता है और नैतिकता के साथ उपार्जन करके अपने लिये आजीविका ग्राह्य समझता

है, गृहस्थ-दृष्टि से उसके लिए वह एषणीय है। परन्तु जो अनैतिकता की भावना से ओत-प्रोत होकर, एक दूसरे की अपेक्षा को छोड कर और कुछ खाने का प्रकरण लूट-खसोट की दृष्टि से जीवन मे रख कर चलता है, उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया हुआ जो अन्न है, वह एषणीय नही कहा जा सकता। उस अन्न का परिणाम उसके जीवन पर पडता है। वह साधना को पूरी तरह नही साध सकता है।

पूणिया श्रावक का जो कुछ महत्त्व प्रकट हुआ, उसका मूल्यांकन भगवान महावीर ने किया। उसके पास करोडो की सम्पत्ति थी। कथा-भाग की दृष्टि से कथाओ मे भिन्नता हो सकती है। कथाओं के कलेवर को पकडने की आवश्यकता नही है परन्तु उनकी भावना मे क्या सार है, उसको ग्रहण करने की आवश्यकता है। करोडो की संपत्ति होने पर भी उसने उस सम्पत्ति को अभाव वाले व्यक्तियों के लिये सुरक्षित रखा। वह उस सम्पत्ति का 'ट्रस्टी' बन कर रहता [illegible] कि उसका मालिक। अपने जीवन का निर्वाह करने के लिए, [illegible] भाग की दृष्टि से, वह सवा रुपये की पूणियो को बेच कर [illegible] करता था और अपना तथा अपनी पत्नी का जीवन-निर्वाह [illegible] निर्वाह की यह स्थिति जिस सादगी के साथ चलती है, [illegible] दृष्टि से वह जीवन कितना पवित्र होता है!

पूणिया आध्यात्मिक-जीवन की साधना में [illegible] साधना एकाग्र होकर चल पड़ती थी। [illegible] उसकी एकाग्रता भग हुई। उसने चिन्तन किया कि [illegible] पाप बना, जिसके कारण मेरी साधना में [illegible] उसने अपने जीवन को देखा। कुछ भी त्रुटि [illegible] उसने सोचा कि मेरी धर्मपत्नी [illegible] यदि कोई त्रुटि हो तो उस त्रुटि का [illegible] मैं उससे सम्बन्ध रख कर चलता हूँ। [illegible] कहा, 'प्रिये, आज तुमसे तो कोई [illegible] नहीं बनी?

छाना भी मालिक की आज्ञा के बिना ले लिया तो चित-भग हो गया और वापिस दे दिया तो चित्त समाधि मे लगा ।

बधुओ ! आज के भाई भी अपने मन को एकाग्र करना चाहते है और चित्त की समाधि को कायम रखने का प्रयत्न करते है। परन्तु क्या कभी आप चौबीस घन्टो के पूर्व की दिनचर्या को देखने का प्रयत्न करते है कि बीते हुए चौबीस घन्टे कितनी गलतियो मे गये, हमने कितनी अनीति की, किस प्रकार से हमने आजीविका का उपार्जन किया, कही बिना मालिक की आज्ञा के आधा छाना तो घर मे नही आ गया ?

उस जमाने की दशा मे और आज की दशा मे भारी अन्तर है। चिन्तन कीजिये कि क्या आज का इन्सान साधना नही कर सकता है ? वह साधना कर सकता है, वह क्रिया कर सकता है परन्तु क्रियाओ मे क्या सशोधन हो और गृहस्थ जीवन की स्थिति नैतिक कैसे बने तथा जीवन भी भोजन के साथ एपणीयता से कैसे जुडे, इसकी ठीक तरह से व्याख्या समझनी आवश्यक है । इस विषय मे कई तरह के विचार मस्तिष्क मे आ सकते हैं । परन्तु यदि इस विपय को आहिस्ता-आहिस्ता ग्रहण करते गये तो आपके मस्तिष्क के विचार सुलझ सकते है ।

जिन्होने गृहस्थ-अवस्था मे अपने जीवन को नैतिकता के साथ रखा है, जिन्होने नैतिकता को प्रधानता देकर आध्यात्मिकता की भव्य मजिल तैयार करने की सोची है और जिनका लक्ष्य शुद्ध है, वे मानव चाहे पुरुप रूप मे हो, चाहे महिला रूप मे, वे इस सृष्टि के बीच मे चमकते हुए सितारो की तरह हजारो वर्षो तक प्रकाश देते रहेगे ।



बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला १३

# श्रीकृष्णजन्माष्टमी

धर्म जिनेश्वर गाऊ रग सू ……………………।

कविता मे धर्मनाथ परमात्मा की स्तुति को उल्लास के साथ गाने का सकेत किया गया है । जब आत्मा भक्ति-रस मे अनुरजित होती है तो वह परमात्मा के चरणो मे तन्मय हो जाती है और हृदय-मदिर मे उनके अतिरिक्त अन्य किसी को भी स्थान नही देती है ।

परन्तु परमात्मा का स्वरूप हर एक व्यक्ति स्वत नही समझ पाता । उसको समझाने के लिये विज्ञ पुरुप की आवश्यकता रहती है और उसमे भी यदि गुरुमुख से प्रवचन का गु जन भव्यात्मा के हृदय मे कर दिया जाता है अथवा हृदय-रूपी नेत्रो मे प्रवचन का अजन लगा दिया जाता है तो भव्यात्मा के दिव्यनेत्र खुल जाते है, जिससे कि वह परम निधान को देख सकती है ।

आत्मा की परम निधि सत्-चित् आनन्दघन रूप है । मानव इस दिव्यशक्ति को अपने चर्म-चक्षुओ से देख नही पा रहा है । इसलिये विज्ञ पुरुषो के वचनो के माध्यम से हृदय रूपी नेत्रो मे अजन आजने से वह इस निधान को देख सकता है । जिन भव्य प्राणियो को ऐसा सयोग मिलता है, वे स्वय अपने मानव जीवन को सार्थक बना कर दिव्य-शक्ति से सम्पन्न बन जाते है । परन्तु ऐसे सयोग के अभाव मे अन्य अनेक आत्माये धर्म के नाम पर विचित्र वातावरण तैयार करती रहती है और भद्रिक जनमानस को वे हर दृष्टि से ठगने की कोशिश करती है । मानव के मस्तिष्क को विकृत बना कर धर्म के नाम पर कुटिल चालो का प्रयोग करके निहित स्वार्थ की सिद्धि की जाती

है परन्तु धर्मनाथ प्रभु के स्वरूप को यदि दिव्य-शक्ति से समझ लिया जाए तो ऐसे प्रसग सहसा नही आ सकते ।

आज अष्टमी है और मुख्य रूप से श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी होने से आज इस विषय को कुछ समझने का प्रसग आया है। अष्टमी तो अनेक आई है और आती रहेगी, परन्तु जब यह जन्माष्टमी आती है, उस समय सहज ही भारत के उन दिव्य महापुरुष का स्मरण हो आता है ।

श्रीकृष्ण का जन्म आज की रात को हुआ । वे अनेक नामो से इस भारत भूमि पर विख्यात हुए। उन्ही नामो मे से उनका एक नाम 'हरि' भी है । हरि नाम का तात्पर्य यदि इस शब्द की व्युत्पत्ति से समझ लिया जाए तो मैं सोचता हूँ कि इन महापुरुष का सही मूल्याकन हो सकेगा । सस्कृत व्याकरण की दृष्टि से हरि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—'हरति दुर्नीति इति हरि ' अर्थात् जो दुर्नीति का हरण करता है, वह हरि है । अथवा 'हरति जनाना दु खानि इति हरि ।' अर्थात् जो जनता के दुखो का हरण करे, वह हरि है । यदि ऐसे हरि का गुणगान किया जाये, उनके महत्त्व को समझा जाए, उनके जन्म समय के पूर्व की भूमिका का ज्ञान किया जाए तो उनकी दिनचर्या का रहस्य स्वत स्पष्ट हो जायेगा । आज के प्रसग से, हरि के गुणगान की दृष्टि से, एक पुरानी कविता का उच्चारण भी मैं कर लिया करता हूँ—

हरि के गुण गाऊ हरि लीला कहि रे सुनाऊ हो-हरि जी ।

बन्धुओ ! यह कविता कुछ पुराने समय की है । कविता नई या पुरानी कैसी भी हो, इस बात का उतना महत्त्व नही है परन्तु कविता के भावो का महत्त्व है । हरि के गुण गाने के प्रसग से हरि की लीला का गान करते हुए यदि आप उनके स्वरूप का ज्ञान करेगे तो आपको यह बात भलीभाति समझ मे आ जाएगी कि उन्होने किस नीति का प्रचार किया था ?

उस समय भारत भूमि में बहुत बडा विप्लव मचा हुआ था। जरासध को राजसत्ता और सम्पत्ति का मद हो गया था। वह उनके नशे मे मदोन्मत्त हाथी की तरह झूम रहा था। उसने सोच लिया था कि जनता का सारा वैभव, सत्ता और सम्पत्ति सगृहीत कर ली जाए और उसका व्यय केवल अपनी मौज-शौक के लिए हो। हम बनायें सो कायदा। उसमे कोई बोल ही न सके। जैसी नीति का हम प्रचलन करे, उसको ही दुनिया नीचा सिर करके सहन कर ले। इस दुर्नीति के साथ उसने अपने कई साथी भी तैयार कर लिये। कस की नीति भी उसका समर्थन करने वाली बनी। शिशुपाल भी उसका ही अनुकरण करने वाला रहा। रुक्मकंवर, दुर्योधन, कालो नाग और कालीकुमार ये सब उस समय की दुर्नीति के मुख्य पात्र कहे जा सकते है। इनकी दुर्नीति के ताडव नृत्य से भारतीय जनता सत्रस्त हो रही थी। उसको कोई शरण नही मिल रही थी। जनता के मुंह से एक ही स्वर निकल रहा था कि इस विचित्र दशा मे कोई उद्धार करने वाला आये।

यह स्वाभाविक भी है कि साधारण जनता मे सहज ही उतना सत्त्व नही आता है। उसमे शक्ति रहती है परन्तु उस शक्ति को जगाने वाला तो कोई होना ही चाहिये। और शक्ति को जगाने वाला कुछ विशिष्ट होता है। जो अद्वितीय रूप मे आता है, वही जनता की शक्ति को उभार कर उसका सदुपयोग कर सकता है। जनता की आवाज खाली नही जाती है। यदि सामूहिक रूप मे अन्तश्चिन्तन का नाद वायुमण्डल मे फैले तो उस वायुमण्डल के परिणाम-स्वरूप किसी न किसी विशेष आत्मा का जन्म इस पृथ्वी पर हुआ ही करता है।

उस समय कस को निमित्तियो ने बताया कि उसकी सत्ता और सपत्ति को चुनौती देने वाला पुरुष उसके ही परिवार मे जन्म लेने वाला है। अत. उसने पहिले से ही उन निमित्तियो की जानकारी के अनुसार अपनी सुरक्षा का प्रबध सोचा। उसने वसुदेव महाराज को

अपने वचन मे आवद्ध कर लिया । वे भद्र परिणामी धार्मिक पुरुष थे और देवकी महारानी पतिव्रता, धर्मपरायणा थी । अत वह पति-वचन को मानने से इन्कार नही कर सकी । जब कस ने अपनी नीति का प्रसार किया तो देवकी को भी उसने जेल मे वन्द कर दिया । कस ने सोचा कि निमित्तियो के कथनानुसार देवकी का गर्भ ही तो मेरा मुकावला करने वाला है । इसलिये मैं पहिले ही इसकी व्यवस्था कर लेता हू ।

उसने अपनी नीति के अनुसार वसुदेव महाराज और देवकी महारानी को जेल मे रख कर उनसे होने वाली सतान को नष्ट करने का निश्चय किया । उसने जेल पर कडा पहरा वैठा दिया। कोई भी व्यक्ति न अन्दर प्रवेश कर सकना था और न कोई वाहर ही निकल पाता था । मानव की दुर्नीति क्या कुछ कर गुजरती है, इसका उल्लेख यदि कोई करने वैठे तो वहुत वडा पोथा तैयार हो सकता है । कस ने न मालूम कौन-कौन-सी दुर्नीति का प्रयोग किया होगा ? परन्तु जिन आत्माओ ने पूर्वजन्म से ही अपनी शक्ति का सचय किया हो, उनका कोई क्या विगाड सकता है ?

आज की आधी रात के समय जेल मे ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ । उस समय वसुदेव जी के हाथो मे हथकडिया और पैरो मे वेडिया पडी हुई थी और देवकी माता की भी यही दशा थी । परन्तु जव उनकी कोख से सतान वाहर आई तो वे हथकडिया स्वत टूट गई, ताले स्वत खुल गए । वे कैसे कारागृह से वाहर निकले, इसकी तो लम्वी कहानी है किन्तु इसे जन्म लेने वाली आत्मा की विशिष्ट शक्ति समझे । अभी इतना समय नही कि मैं उस कहानी को सागोपाग आपके समक्ष रखू । केवल भाव ही रख रहा हूँ । उनके जन्म लेते ही वेडिया टूट गई । उन्होने सव वधनो को तोड दिया । वे शिशु थे । आप सोच सकते है कि उनमे तोडने की शक्ति कहा थी ? परतु वह शक्ति गुप्त रूप से कैसे काम करती है, इसका पता जन-साधारण नही लगा पाता है । वे सव पहरेदारो के वीच मे से निकल कर, जहा

सरक्षण पाना था, वहां पहुंच गए। फिर यशोदा के यहा उनका पालन-पोषण हुआ। जब उनकी बचपन की लीला चालू हुई तो उस लीला का रहस्य कौन व्यक्ति समझ सकता है ? ऊपरी अवस्था को देख कर छोटे मस्तिष्क के व्यक्ति तो महापुरुषो के लिये छोटी-छोटी कल्पनाये किया करते है ।

गोकुल के जिस परिवार मे वे बढ रहे थे, उस परिवार में जेवरो अथवा अच्छे वस्त्रो की कमी नही थी । परन्तु उन्होने अच्छे जेवर और वस्त्र नही पहिने । उन्होने तो सादी पौशाक ही सजाई । उस सादी पौशाक को सजाने मे भी रहस्य भरा हुआ था—भारत की भूमि मे जब तक जनता का दु ख निवारण नही हो, जब तक समान स्तर पर अपने जीवन को बिताने में भारतीय समर्थ नही हो, तब तक मुझे अपने जीवन के अन्दर सादगी ही रखनी है ।

आज के युग मे कुछ व्यक्ति जनता की सेवा करने का प्रण धारण करके दुनिया को बताते है कि हमने सेवाव्रत ले रखा है । परन्तु वह किस रूप मे ले रखा है ? आज के सेवा-व्रतियो के व्रत का और प्राचीन युग के उन महापुरुषो के व्रत का मूल्याकन कीजिए । आजकल जनता की सेवा करने वाले जब व्रत लेकर चलते है तो उनके लिये बढिया से बढिया 'कार' चाहिये, बढिया से बढिया पौशाक चाहिये और बढिया से बढिया 'एयर कन्डीशन्ड' (वातानुकूलित) बगला चाहिये । उन्हे ऊचा पद भी चाहिये । वे सिंहासन पर बैठे और सारी साधन सामग्री उन्हे उपलब्ध हो तो वे जन-सेवा कर सकते है, वर्ना उनसे सेवा नही हो सकती है । कलियुग के पचम काल के सेवकों का तो यह हाल है । श्रीकृष्ण बचपन से ही गायो की सेवा की दृष्टि से, जन-सेवा की दृष्टि से कैसे तत्पर हुए ! उनके जीवन की घटनाये कैसी-कैसी लीला से सयुक्त है ! उनका हम मूल्याकन नही कर सकते । आज के फैशनेविल व्यक्ति फंशन मे पड़ कर उनका मूल्याकन नही कर सकते । उनका जीवन कुछ और था और इनका जीवन कुछ और है । उन्होने

कालिया नाग के विष का शमन किया। जरासंध, रुक्मकंवर, शिशुपाल और दुर्योधन आदि को किस प्रकार कैसी कुशलता से शिक्षा दी ? कौन किसके योग्य था और किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह उनके जीवन-चरित्र से स्पष्ट समझ सकते हैं।

उस महापुरुष ने जन्म लेकर हर तरह से जनता के दुःखो का निवारण किया, दुर्नीति का अन्त किया, सद्नीति के साथ जनमानस के स्तर को उन्नत बनाया और फिर शांति का आदर्श उपस्थित किया।

यद्यपि आज भी उस हरि के जन्म की जयंती मनाते है परन्तु उनके आदर्शों को सामने रख कर जयन्ती मना रहे हैं क्या ? कृष्ण का जन्म कराना है क्या ? आप क्या सोचते होगे और किस प्रकार उनका जन्म कराते होगे ? कुछ भक्त लोग आज की रात्रि के अन्दर अपने विचारो के अनुरूप कुछ टीम-टाम कर लेगे अथवा यत्र-तत्र उनके जीवन की कुछ झांकियो का उद्घाटन कर देगे। इस प्रकार हरि का जन्म करवा कर अपने मानस की तृप्ति कर लेगे कि हमने कृष्ण का जन्म करा दिया।

बंधुओ ! हरि का जन्म ऐसे नहीं होगा। हरि का जन्म तो आपके दिल मे होना चाहिये। यदि आज की रात्रि मे आपके जीवन मे उनका जन्म हो जाए तो सभी ज्वलंत समस्याओ का हल सहज मे ही निकल सकता है।

आज भारतभूमि पर पूर्वकाल के मुकुटधारी जरासंध आदि तो नहीं है, पौशाक के जरासंध तो नही है परन्तु उनका प्रतिनिधित्व करने वाले जरासंध तो आज भी मौजूद है। जरासंध की भावना क्या थी ? सत्ता और सम्पत्ति मेरी रहे। इस सत्ता और सम्पत्ति को कोई आंच पहुंचाने वाला हो तो हम उसका दमन कर डाले, उसे नष्ट कर दें। यह नीति जरासंध की थी। ऐसी नीति क्या आज के युग मे नहीं है ? क्या जरासंध के भाई फिर प्रगट नहीं हो गये हैं ?

कंस की नीति भी ऐसी ही थी। कंस चाहता था कि मैं बनाऊ

मो कानून। मेरे कानून मे कोई दखल नही दे। मै शक्तिबल से ही सबको समझू। देवकी नारी है—वह क्या कर सकती है? वसुदेव महाराज भद्र प्रकृति के धार्मिक मानस वाले पुरुष है। मेरे सामने वे क्या कर सकते है? उनको कैद मे डालना उसके बाये हाथ का खेल था। क्या आज भी वह कस इस मुकुटबध स्थिति और बल के साथ नही है? सभव है, कस की नीति भी आज के युग मे चल रही होगी।

काली नाग उस वक्त गायो के ऊपर विष छोडता था और वे विषमय बन जाती थी। आज काली नाग तो नही है लेकिन मानव अपनी विषमता के रूप से अपनी पाचो इन्द्रियो मे जहर चढा रहा है और आज ये पाचो इन्द्रिया विषयासक्त बनी हुई है। आज भी उस समय की नीति का समर्थन करने वाले, सत्ता और सम्पत्ति के साथ आसक्ति रखने वाले न मालूम कितने कालिया नाग पैदा हो रहे है, जिन्होने वर्तमान समाज मे विषमता की खाई पैदा कर दी है और वे चारो तरफ विषमता का जहर बरसा रहे है।

'गो' शब्द का अर्थ गाय होता है और इसे पाचो इन्द्रियो के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है। पाचो इन्द्रियो को विषयासक्त बनाने वाला मानव अपने इस जन्म मे तो दुःख पाता ही है लेकिन भविष्य मे भी वह दुखी ही बनता है। उस जमाने मे इन्द्रियो मे आसक्ति रखने वाले कितने क्या थे और उनको श्रीकृष्ण ने इस विषयासक्ति से हटाने के लिये क्या कुछ किया, उसी का वर्णन आपके सामने है।

शिशुपाल को भोग-विलास का मुख्य केन्द्र समझा जा सकता है। वह रूप का पतगा बन कर राजकन्या रुक्मिणी का हक छीनने को तैयार हुआ। वैसे ही आज भी शिशुपाल की तरह जीवन रखने वाले न मालूम कितने व्यक्ति कन्याओ के हक को छीन रहे है और रूप के लोलुपी बन रहे है। उन व्यक्तियो के लिये यदि आप चिंतन करेगे तो ज्ञात होगा कि शिशुपाल का रूपक भी आज मौजूद है। शिशुपाल का समर्थन रुक्मकवर कर रहा था। वैसे ही आज पाचो

इन्द्रियो पर विषय भोगो का जहर चढाने वाले सस्कार सारे भारत में प्रचलित हैं। वे उनको प्रश्रय दे रहे है।

दुर्योधन ने भी किस प्रकार से छल-बल करके अपने भाइयो को कष्ट मे डाला ? पाडव ईमानदारी के साथ वनवास का दु ख सहन करके अज्ञात-वास के वाद प्रकट हुए और अपने हक की वस्तु मागने लगे तो दुर्योधन ने यही कहा कि मैं विना युद्ध किए उन्हे सूई की नोक जितनी जमीन भी नही देना चाहता। यह दुर्योधन की नीति थी। आज दुर्योधन के नाम का व्यक्ति तो नही रहा, परन्तु वर्तमान मे क्या ऐसी नीति मौजूद नही है ? क्या आज अपने भाइयो के हक को छीन कर लोग सर्वेसर्वा बनने की कोशिश नही कर रहे है ?

एक दृष्टि से देखा जाए तो आज जिधर भी नजर डालिये उधर इस भावना का ही प्रदर्शन मिलेगा। यदि ऐसे विकट समय में आपको हरि का जन्म कराना हो तो आप अपने जीवन मे कुछ तैयारी कीजिये। हरि का जन्म उस कोठरी मे हुआ, जो जेल की कोठरी कहलाती है। अत आप इस वक्त भी इन दुर्नीतियो को मिटाने वाले हरि का जन्म कराना चाहे तो अपने दिल की कोठरी मे उनका जन्म कराइए।

आत्मिक शक्ति हरि का प्रतिनिधित्व करने वाली है। इस आत्मिक शक्ति को प्रवल वनाने की आवश्यकता है। जन्माष्टमी केवल जयनाद से या वाह्री दृश्य उपस्थित करने से नही होगी। महापुरुषो का स्मरण केवल मनोरंजन के लिए या इन्द्रिय-पोपण के लिये नही परन्तु जनता के दु ख-निवारण के लिए होना चाहिये।

मैं सोचता हूँ कि आज के युग मे हरि का जन्म समता-दर्शन के रूप मे होना चाहिये। हरि के मन मे समता की भावना थी। समय समय पर उन्होने समता की भावना को अभिव्यक्त करते हुए उसे आचरण का रूप दिया।

गीता मे एक प्रश्न आया कि दुनिया मे बहुतेरे व्यक्ति पण्डित

कहलाते है परन्तु पण्डित किसको कहना चाहिये ? कौन पण्डित कहला सकता है ? इसका उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है कि—

विद्या-विनय-सपन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च, पडिता समदर्शिनः ।।
(गीता अध्याय ५ श्लोक १८)

इसका अर्थ है कि चाहे विद्या, विनय से सम्पन्न ब्राह्मण हो, गाय हो, हाथी हो, श्वान हो या चाडाल हो, इन सबमें जो समदर्शी है, वह पण्डित है।

मै समझता हूँ कि इस श्लोक का अर्थ कई व्यक्ति शब्द उच्चारण के साथ कर जाते होगे। परन्तु इसका तात्पर्य क्या है ? इसमे कौन-सा मर्म भरा हुआ है ? कौन-सा सकेत है ? कौन-सा दर्शन है ? आदि बाते सोचने की फुर्सत नही है। सोचे भी तो कैसे सोचे ? मस्तिष्क और आचरण में तो जरासध, कंस और शिशुपाल आदि बैठे है। वे सोचने ही नही देते है।

यदि भारतवासी इस श्लोक पर चितन कर लेते तो आज यह दयनीय स्थिति नही होती और न इतनी खून-खराबी और यह हिसा का ताडव-नृत्य ही देखने को मिलता—परन्तु जो कुछ हुआ सो हुआ, अब भी विषमता के बीच समता-दर्शन लाने की तैयारी मे लगे।

हरि को हृदय मे याद करना है और उनके नाम की व्युत्पत्ति को समझना है। हरएक व्यक्ति को इसके लिए तत्पर होना चाहिए। उनका जन्म समता-दर्शन के रूप में हो सकता है। मै समदृष्टि के अभिप्राय को समता-दर्शन के साथ जोड रहा हूँ। समता दर्शन का प्रवेश यदि मनुष्य के मस्तिष्क मे हो जाये तो सत्ता और सम्पत्ति पर करारी चोट पडेगी। आज जो सत्ता और सम्पत्ति का लोलुप बन रहा है और जरासध का रूप लेकर चल रहा है, उस पर समता-दर्शन का प्रहार होगा और विषमता हटेगी।

आज कालिय नाग का जहर संसार के प्रत्येक कोने मे बरस

रहा है। मनुष्य इस जहर से इतना जर्जरित है कि उसकी दयनीय दशा बन रही है। आज जो अनैतिकता का ताडव-नृत्य देखने को मिल रहा है, ससार मे अवाधुधी दृष्टिगत हो रही है, इन विषयो की जड विषमता मे ही जमी हुई है। अत यदि समता-दर्शन को अपने मस्तिष्क मे स्थान देगे तो जीवन समता के धरातल पर बनेगा और आचार को सुधारने मे कष्ट नही होगा।

इसलिए यदि आज सच्चे दिल से हरि का जन्म कराना चाहते है और दिल मे कराना चाहते हैं तो समता-दर्शन को अपने जीवन का स्वरूप बनावे। यह नही कि मुह से उच्चारण करे समता-दर्शन का और जीवन मे उसे नही ले।

हरि को जन्म दीजिए-दिल मे। जो दुख को दूर करता है, वह हरि है। यदि समता-दर्शन को मस्तिष्क मे जन्म दिया और समता दर्शन की भावना दिल मे रखी तो विषमता दूर भाग जाएगी। ये विषमता रूपी काली नाग, कस, जरासध सब समता से बिंध जायेंगे। हरि ने क्या किया ? काली नाग को बीधा था। उसके हजार फण थे। वे एक को नाथते तो दूसरा और दूसरे को नाथते तो तीसरा मुह खुलता था। उन्होने सबको काबू में किया और विषहीन बनाया। वैसे ही इस विषमता रूपी काली नाग के हजार फण ही नही, लाख फण है। उन लाख फणो को यदि हरि की शक्ति से बीधना है तो आप समता-दर्शन को अपनाइये।

मैं ऊपर कथा-भाग के सार को रख गया हूँ और इसलिये रख गया हैं कि आज के भारतीयो की दयनीय दशा को देख कर सोच रहा हू कि कहा वे महपुरुष और कहा आज की जनता। आज उनके जन्म-दिवस को मनाते है परन्तु उनके उद्देश्य को भूल कर चलते हैं। गीता का प्रथम श्लोक है—"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे।' यहा 'कुरुक्षेत्र' कहा गया है तो मैं इसकी यह व्याख्या कर रहा हूँ कि 'कुरु' अर्थात् 'करो' और क्षेत्र अर्थात् स्थान। इसमे कर्तव्य की ओर सकेत है। परन्तु

मनुष्य कर्तव्य को भूल गया है और कौन-सा धर्मक्षेत्र है तथा कुरुक्षेत्र क्या है, इसका विज्ञान आज की जनता को नही है। आज लोग अपनी लम्बी-चौडी बाते रख देते है परन्तु कर्तव्य-कर्म से पीछे हटते है। वे काम करना नही चाहते है परन्तु पदवी लेना चाहते है। यह तो स्वार्थकारी कर्म है। जो स्वार्थ-भावना से चलने वाले है, वे 'कुरुक्षेत्र' की व्याख्या नही समझ सकते।

एक बार गाधीजी साबरमती-आश्रम का निर्माण करा रहे थे तो गुजरात के एक बडे विद्वान उनके पास आए और कहने लगे, "महात्मन्! मै आपके पास रह कर गीता का गूढ रहस्य समझना चाहता हूँ।" महात्माजी ने उनकी बात सुन ली और उन्होने रावजी भाई को बुलाया। वे आश्रम की जिम्मेवारी लेकर चल रहे थे। रावजी भाई आए तो महात्मा जी ने कहा, "ये गुजरात के प्रख्यात व्यक्ति है और मेरे पास गीता का गूढ रहस्य समझने के लिए आए है। आपके पास कोई काम हो तो इन्हे उस पर लगा दें।"

रावजी भाई के पास आश्रम-निर्माण का बहुतेरा काम था। उन्होने उनसे कहा कि आप गाधीजी के पास रहना चाहते है तो ईंटे उठा कर रखते जाइये। वे कुछ बोल नही सके। परन्तु दो-चार रोज तो उन्होने ईंटे उठाईं, फिर तग आ गए और रावजी भाई से कहने लगे– "मेरी तो आपने दुर्दशा कर दी। मै तो गीता का गूढ रहस्य समझने के लिए आया था और आपने मजदूर का काम मेरे सुपुर्द कर दिया। यह मेरा काम नही है। यह तो मजदूरो का काम है।"

यह बात जब गाधीजी के पास गई तो उन्होने कहा कि यही तो गीता का गूढ रहस्य है। आप केवल गादी-तकिए के सहारे बैठ कर गीता का गूढ रहस्य समझना चाहते है तो क्या वह ऐसे समझ मे आ सकता है? आप अपने कर्तव्य को सभालें और जिस क्षेत्र मे चल रहे है, उसकी जिम्मेवारी लें तो वह गूढ रहस्य समझ मे आ सकता है।

मैं अपनी स्थिति मे सबोधन कर रहा हू। आप गीता का गूढ रहस्य समझना चाहे तो सारी गीता को टटोलने की आवश्यकता नही, इस एक ही श्लोक को देख लीजिये। यदि इस श्लोक को आप जीवन में साकार रूप दे देते है तो आपको जीवन की सभी समस्याओ का ज्ञान हो जायेगा।

आज अपनी शक्ति के अनुसार अपने-अपने अदर हरि का जन्म कराइये। वह जन्म आपके लिए हितावह होगा। इस अवसर पर यदि जीवन मे समता-दर्शन आ गया तो आप सब तरह से जीवन मे आनद का अनुभव करेंगे, समाज को आनद देगे और सर्वत्र शाति की स्थापना करेगे।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रीकृष्णजन्माष्टमी